था वैसा नहीं आया"। जितने लोग सभा में बैठे थे उन सबों को भी चरणामृत देकर बोले कि "मन को एकाग्र कर पान करो, कहां वह स्वाद है ?" वे बिचारे चरणामृत की महिमा और स्वाद किंचित भी नहीं जानते थे क्या बताते। आप तो परमनिष्ठ थे, आपने जान लिया कि किसी संत का चरणामृत लेते में छोड़ दिया है। पूछने से वह दास कहने लगा कि "हां, एक कोढ़ी वेषधारी तो रहगया है;" आपने आज्ञा दी कि "उनका भी लेआओ"। फिर उनका भी मँगा के जब आपने चरणामृत लिया, तब सुख स्वाद पाने से आपके नेत्रों से प्रेमाश्रु झरने लगे॥ जै जय !

(४८१) टीका। कवित्त (८४२—४८१ = ३६१)

नृपति समाज मैं, विराज भक्त राज, कहैं, वे विवेक, कोऊ कहानि प्रभाव है। तहां एक ठौर साधु भोजन करत, करते रौर देखौ दूजी सोटा संग, कैसे आवै भाव है॥ पातरि उठाय श्री गुसाईं पर डारिदई, दई गारी, सुनी आप बोले देख्यो दाव है॥ सीत सौं विमुख मैं तो, आनि मुख मध्य दियो; कियो दास दूर, संत सेवा में नचाव है॥ ॥ ३८६ ॥ (६२९—३८६ = २४३)

वार्त्तिक तिलक।

किसी दिवस कई एक राजा और सज्जनों के समाज में भक्तराज श्री रसिक मुरारि जी विराजे हुए भक्तिविवेक मई वार्ता कह रहे थे, वे सब श्रोता विवेक को ग्रहण कर

ते थे; क्योंकि आपका कथन बड़ाही प्रभावयुक्त था। उसी समय सब संत इकट्ठे भोजन-प्रसाद पाने को विराजे थे, उन में से एक वेषधारी अपने सोंटे (डंडा) के लिये दूसरा पारस (प्रसाद पत्तल) मांगता था, और पनवारा पत्तल न देने से झगड़ा करने लगा; आपके भंडारी अधिकारियों को सोंटे में भाव कैसे आता, इस्से उन्होंने नहीं दिया। खीजकर वह पत्तल प्रसाद उठा, उसने श्री गुसाईं जी के ऊपर डाल गालियां भी दी सुनकर आप बोले "देखो संतकी कृपा से मेरा कैसा अच्छा दाव पड़गया है, मैं केवल चरणामृत लेता, और सीत प्रसादी से बिमुख था; सो इन संतने लाके मुख में डाल दिया"। यह कह उसको सोंट का और उसका भी दो पत्तल पारस दिला दिये।

वह दास जिसने सोंटेका पत्तल नहीं दिया तिसको उस कैंकर्य (बंदगी) से छुड़ा दिया, कि "संत-सेवा में तेरा भाव अनुराग नहीं है, क्यों जी? सोटे का पत्तल क्यों न दिया? इस सोटे से भांग घोट कर और पीकर संत तीन पारस उड़ाय जाते हैं।"

(४८२) टीका। कवित्त (८४२–४८२ = ३६०)

बाग में समाज संत, चले आप देखिबेको, देखत दुरायौ जन हुक्का, सोच पर्‌यो है। बड़ो अपराध मानि, साधु सनमान चाहैं, "घूंमितन," बैठि कही "देखौ कहूं धर्‌यो है"॥ जायकै सुनाई दास, काहूके तमाखू पास, सुनिकै हुलास

बढ्यौ, आगें आनि कऱ्यो है।झूठेही उसांस भरि, सांचे प्रेम पाय लिये, किये मन भाये, ऐसे संका दुख हऱ्यो है॥३८७॥ (६२९–३८७ = २४२)

वार्त्तिक तिलक ।

एक समय आपके वाटिका में संतों का समाज विराजमान था, आप दरशन के लिये गये; एक वेषधारी नारियल (हुक्का) पीरहा था, आपको देख, संकुचित हो, नारियल (हुक्के को) छिपादिया; आप अपना बड़ा अपराध मान, उस साधु का सन्मान करने के लिये, झूठही पेटथाम (पकड़) घूमकर बैठगए; और एक दाससे कहनेलगे कि "मेरे पेटमें बड़ी पीड़ा उठी है, कहीं (हुक्का) नारियल चिलम मिले तो यह उससे अच्छा हो।" सेवक को कहा कि "देखो किसी संत के पास हो तो लेआओ" वह सेवक सब संतों से पूछने लगा कि "किसी के पास पीने की तमाखू होय तो दीजिये।" वह पीनेवाला जो संकुचित हुआ था सो बड़ा प्रसन्न हो, आगे ले आया । आप झूठही पीने की भांति उसांस (फूक) लेकर मानो उसको पानकर पीड़ा रहित होगये । इस प्रकार आपने संका सोच दुःख हरके उस साधूको प्रसन्न किया ॥

(४८३) टीका । कवित्त (८४२—४८३ = ३५९)

उपजत अन्न गांव, आवै साधु सेवा ठांव, नयौ नृप दुष्ट आय कांव कांव कियौ है । ग्रामसो जबत कऱ्यो कऱ्यो ले

विचार आप स्यामानन्दजू मुरारि पत्र लिखि दियौ है ॥ जाही भांति होहु ताही भांति उठि आवौ इहा आये हाथ बांधि करि अचैहूनालियौ है ॥ पाछे साष्टांग करी करीके निवेदन सो भोजन में कही चले आये भीज्यौ हियौ है ॥ ॥ ३८८ ॥ (६२९–३८८ = २४१)

"ज़ब्त कर्यौ" = ضبط کیا = रोकलिया = लेलिया ।

वार्त्तिक तिलक ।

स्थान के संबंध में एकग्राम था, उसमें खेती से बहुत सा अन्न उत्पन्न होता था जिससे स्थान में संत सेवा होती थी । दैववश एक नया दुष्ट राजा हुआ, उसने बहुत से दुर्वचन बोल, ग्राम ले लिया । श्रीरसिक मुरारि जी के गुरुदेव " श्री श्यामानन्द " जी उस ग्राम में थे, वहां से आपको पत्र लिखा कि " तुम जिस भांति हो उसी भांति पत्र देखतेही चले आओ । " आप प्रसाद पाते थे आज्ञा सुनकर वैसेही चलदिये, सत्रह कोस में श्रीश्यामानन्द जी थे, आप के मुख हाथ जूठे थे, इससे पीछेही से साष्टाङ्ग दंडवत कर हाथ जोड़ निवेदन किया कि प्रसाद पातेही मैं आज्ञा सुन वैसेही चला आया हूं। यह सुनकर श्रीश्यामानन्द जी का हृदय कृपा प्रसन्नता से भींग गया ।

जैसे एक स्त्री प्रियतम पति की आज्ञा सुनकर मूसल को ओखली के ऊपर आकाश में ही छोड़कर दौड़ी; तथा दूसरी स्त्री डोरी को कुएं में से बिना निकाले छोड़ आ पहुँची । (दोनों के मूसल व डोरी डोल वैसेही अधड़ में राम कृपा से टंगे रहे ।)

(४८४) टीका । कवित्त (८४२—४८४=३५८)

आज्ञा पाय, अचयो लै, दै पठाये वाही ठौर दुष्ट सिरमौर जहां, तहां आप आये हैं। मिले मुतसद्दी सिष्य, आइकै सुनाई बात, "जावौ उठि प्रात," यह नीच जैसे गाये हैं। "हमही पठावैं, काम करि समझावै सब, मनमें न आवै, जानी नेह डर पाये हैं॥ "चिंता जिनि करौ, हियें धरौ निहचिंतताई, "भूप सुधि आई दिना तीन कहां छाये हैं" ॥३८९॥
(६२९—३८९ = २४०)

"मुतसद्दी" متصدی = पटवारी, मन्त्री, दीवान, मेहुलेखक।

वार्त्तिक तिलक।

श्री गुरु आज्ञा पाय आपने आचमन किया मुंह हाथ धोये। आपको समर्थ जान, श्रीश्यामानन्दजी ने उस खल राज के पास भेजा; जहां वह दुष्ट सिरमौर था, वहां आप आये। वहां के कायस्थ मंत्री लोग आपके शिष्य थे, वे सब आपके पास आए और वह राजा जैसा नीच था सो सब कह उन सब ने प्रार्थना की कि "आप प्रातःकाल यहां से चले जाइये, हमको उसके पास भेजिये, हम उसको समझाकर सब कार्य्य सुधार लेंगे"। उन लोगों का कहना आप के मनमें नहीं आया, जाना कि ये लोग हमारे स्नेह से डरते हैं। तब शिष्यों को आपने समझाया कि "तुमलोग कुछ चिंता मत करो, हृदय में निश्चिंत रहो; जाकर हमारा आगमन उससे कह दो"।

शिष्य लोग आपके पास तीन दिन तक रहे; इससे राजा ने इनको बुलाकर पूछा "तुम लोग तीन दिन कहां रहे?" इन्हों ने कहा कि "हमारे श्रीगुरुजी आये हैं, उनके समीप थे।"॥

(४८५) टीका । कवित्त (८४२–४८५ = ३५७)

सुनी आये गुरुवर, कही "ल्यावो मेरे घर, देखौं करामात," बात यह लै सुनाई है। कह्यौ आनि "अमू जावौ," "चलौ, उनमान देखौं," चले सुख मानि, आयो हाथी धूम छाई है॥ छोड़िके कहार भाजि गये, न निहारि सके; आप रस सार बानी बोले जैसी गाई है। "बोलौ 'हरे कृष्ण कृष्ण,' छाड़ौ गज तम तन, सनि गयो हिये भाव, देह सो नवाई है॥ ३९० ॥ (६२९–३९० = २३९)

वार्तिक तिलक।

दुष्ट राजा ने मंत्रियों के मुख से यह सुनकर कि "हमारे गुरु स्वामी जी आये हैं" कहा कि "उनको हमारे यहां लाओ, हम उनकी कुछ 'करामात' देखें, तब गांव देंगे।" उसने जब यह बात सुनाई, तब आपके शिष्यवर्ग ने फिर आप से प्रार्थना की कि "स्वामी जी! आप अब भी स्थान को चले जाइये" आप ने उत्तर दिया "चलो, उसको देखूं क्या कहता करता है।" ऐसा कह, पालकी पर विराजमान हो, सुख पूर्वक पधारे।

उधर से दुष्ट ने बड़ा पागल और मनुष्यों को मार-

डालनेवाला, एक हाथी सामने छुड़वा दिया। हल्ला धूम मचा, कहार सब पालकी छोड़ कर भागे; हाथी की ओर देख भी न सके। आप हाथी के प्रति प्रभावयुक्त परम रसीली बानी बोले कि "हे चेतन! तुम हाथी शरीर का तमोगुण तजो, श्री हरे कृष्ण श्री हरे कृष्ण बोलो।" आप का प्रभाव-युक्त उपदेश सुनते ही हाथी का हृदय भाव से भर गया; अपना मस्तक और सूंढ आपके चरणों में नवाकर उसने प्रणाम किया॥

(४८६) टीका। कवित्त (८४२-४८६=३५६)

बहै दृग नीर, देखि ह्वै गयौ अधीर, आप कृपा करि धीर कियौ, दियौ भक्ति भाव है। कान में सुनायौ नाम, नाम दै "गुपालदास," माल पहिराई गरें, प्रगट्यौ प्रभाव है॥ दुष्ट सिरमौर भूप लषि, उँहि ठौर आयौ, पाय लपटायौ, भयौ हियें अति चाव है। निपट अधीन, गांव केतिक नवीन दिये, लिये कर जोरि "मेरौ फल्यौ भाग दाव है" ॥ ३९१ ॥ (६२९-३९१=२३८)

वार्त्तिक तिलक।

हाथी आप के दर्शन कर वचनामृत सुन, प्रेम से अधीर हो गया, नेत्रों से जल की धारा चलने लगी; आप ने कृपा से हाथी को धीर कर, भक्ति भाव दे, कान में भगवन्नाम मंत्र सुना दिया, "गोपालदास" नाम उसका रक्खा, गले में श्रीतुलसी जी की माला पहिना दी।

आपका प्रभाव प्रगट देख दुष्ट शिरोमणि राजा भी आप के समीप आ, चरणों में लिपट गया। इसके हृदय में भी प्रेम उत्साह हुआ, और अत्यंत आधीन होकर, वह ग्राम तथा और कई नवीन ग्राम देकर, हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगा कि "मेरे बड़े भाग्य हैं जो आपके दर्शन हुए"॥

(४८७) टीका। कवित्त (८४२–४८७ = ३५५)

भयौ गजराज भक्तराज, साधु सेवा साज, संतनि समाज देखि करत प्रनाम है। आनि डारै गोनि, बनजारनि की वारन सो, आयेंई पुकारन वै जहां गुरुधाम है॥ आवत महोछो मध्य, पावत प्रसाद सीत, बोले आप हाथी सों, "यों निंद्य वह काम है"॥ छोड़िदई रीति, तब भक्तन सों प्रीति बढ़ी, संगही समूह फिरै फैल गयो नाम है॥३९२॥ (६२९–३९२ = २३७)

वार्त्तिक तिलक।

इस प्रकार, श्रीरसिकमुरारि जी दुष्ट राजा को परचौ दे, मत्त गजेन्द्र को शिष्य कर, साथ में ले, अपने स्थान में आए। अब तो वह गजराज पूरा भक्तराज हो गया; संतों को देखकर प्रणाम करता; और सेवा भी करता था, जहां बनजारे (व्यौपारी) लोग रहते वहां से आटा दाल चावल की गोन (गठरी) स्थान में ले आता था। गजभक्त के गुरु स्थान में आकर उन बनजारों ने पुकार किया॥ उस हाथी का नियम था कि संतों के महोत्सव भंडारे में आता,

संतों का उच्छिष्ट प्रसादी पाता था। जब भंडारे में हाथी आया तब श्रीरसिकमुरारि जी ने कहा कि बनजारों की वस्तु बलात्कार ले आना निन्द्य काम है, छोड़ दो, गुरु आज्ञा मान गोपालदासजी ने वह रीति छोड़ दी, परन्तु सब बनिकों ने आप सीधे का नियम कर दिये। संतों से हाथी की प्रीति बहुत बढ़ी। अब तो इन (गजगोपालदास) के साथ में संतों की "जमात" फिरने लगी; "गजगोपालदास महंत" का नाम सर्वत्र विदित हो गया॥

(४८८) टीका। कवित्त (८४२-४८८ = ३५४)

संत सत पांच सात संग, जित जात तित लोग उठि धावैं, ल्यावैं सीधे, बहु भीर है। चहूँदिसि परी हई, 'सूबा' सुनि चाह भई, हाथ पै न आवत सो आनै कोऊ धीर है॥ साधु एक गयौ गहि ल्यौ भेष दास तन; मनमें प्रसाद नेम, पीवैनहीं नीर है॥बीते दिन तीन चारि, जल लै पिवावै धार, गंगाजू निहारि मधि तज्यौ यों सरीर है॥ ३९३॥ (६२९ -३९३ = २३६)

वार्तिक तिलक।

महन्त गज गोपालदास जी के संग में पांच सात सौ मूर्ति सन्तों का समूह रहने लगा, जिस ओर जाते थे वहां सब लोग उठ दौड़ते, संतों के लिये सीधा सामग्री ला देते थे, लोगों की भीर लगजाती थी, इस गजेन्द्र की भक्ति की चारों दिशाओं में धूम मच गई।

इस बात को यमन प्रान्त-राजा (सूबा) ने सुना; उसको हाथी के देखने की इच्छा हुई, बहुत लोगोंको भेजा कि "पकड़ लाओ" परंतु हाथी किसी के हाथ न आया। उसने कहा कि "जो कोई धीर हाथी को पकड़ लावे उस को हम बहुत द्रव्य देंगे ।" यह सुन एक दुष्ट साधु-वेष-धारी गया, पकड़ लाया; श्री गोपालदास जी संत का वेष देख चले आये । परंतु गज गोपालदास जी का नियम चरणामृत प्रसाद लेने का था, इससे आपने जल नहीं पिया, तीन चार दिन बिना जल बीत गये, तब विचार कर लोग उनको श्रीगंगा जी की धारा में जल पिलाने ले गये । गज भक्त गंगा में प्रवेश कर, शरीर छोड़, भगवत धाम को चले गये; भक्तोंने जयजयकार किया ॥

(४८९) मूल छप्पय । (८४२-४८९ = ३५३)

भव प्रवाह निस्तार हित, अवलंबन ये जन भये ॥ सोझा[1], सीवाँ[2], अधार[3] धीर, हरिनाम[4], त्रिलोचन[5] । आसाधर[6], द्यौराजनीर[7], सधना[8] दुखमोचन ॥ काशीश्वर[9], अवधूत, कृष्णकिंकर[10] कटहरियाँ[11] । सोभू[12], उदाराम[13], नामडूगर[14] व्रतधरिया ॥ पदम[15], पदारथ[16], रामदास[17], विमलानंद[18], अमृत श्रये । भव प्रवाह निस्तार हित, अवलंबन ये जन भये ॥ ९६ ॥ (२१३-९६ = ११७)

वार्त्तिक तिलक।

संसार प्रवाह में बहे जाते हुए जीवों के निस्तार के लिये ये भगवतभक्त अवलंबन रूप हुए। सोझा जी, सीवां जी, धीर मतिवाले, अधार जी, हरिनाम जी, त्रिलोचन जी, आसाधर जी, द्योराजनीर जी, संसारी जीवों का दुख छुटाने वाले, सघनजी, गुसाईं, काशीश्वर, अवधूत जी, कृष्णकिंकर जी, कटहरिया जी, सोभूजी, उदाराम जी, श्री राम नाम स्मरण व्रत धरनेवाले डूंगरजी, पदमजी, पदारथ जी, रामदास जी, और विमलानन्दजी।

इन (अठारह) भगवत जनो ने अपने वचन और कर्मों से जीवों पर प्रेमामृत की वर्षा की॥

१ श्री सोझा जी	१० श्री कृष्णकिंकर जी
२ श्री सीवां जी	११ श्री कटहरिया जी
३ श्री अधार जी	१२ श्री सोभू जी
४ श्री हरिनाम जी	१३ श्री उदाराम जी
५ श्री त्रिलोचन जी	१४ श्री डूगर जी
६ श्री आसाधर जी	१५ श्री पदूम जी
७ श्री द्योराजनीर जी	१६ श्री पदार्थ जी
८ श्री सघन जी	१७ श्री रामदास जी
९ श्री काशीश्वर जी	१८ श्रीविमलानन्द जी॥

(४९०) टीका । कवित्त (८४२–४९० = ३५२)

श्री सदना (सधना) जी

सदना कसाई, ताकी नीकी कस आई, जैसे बारैबानी सोने की कसौटी कस आई है । जीव को न बध करै, ऐपै कुलाचार ढरै बेंचै मांस लाय, प्रीति हरि सों लगाई है ॥ गंडकीको सुत बिन जाने तासों तौल्यौ करै, भरै दृग साधु आनि पूजे, पै न भाई है ॥ कही निसि सुपनें मै " वाही ठौर मोको देवौ, सुनौं गुनगान, रीझौं हिय की सचाई है" ॥ ३९४ ॥ (६२९ – ३९४=२३५)

वार्तिक तिलक ।

सधन जाति के कसाई थे उनकी (दुःखादि रूप) कसौटी में बहुत अच्छी कस (परीक्षा) उतरी, जैसे बारह बानी सोंना की कस कसौटी में उपटती है । यद्यपि जन्म कसाई कुल में हुआ तथापि आप जीव को नहीं बध करते थे, अपने कुल का आचरण जान और कसाइयों के यहां से मांस लाकर बेचा करते थे । पूर्व संस्कार के बश स्वभाविकही श्रीहरि से प्रीति लग गई; सप्रेम नाम स्मरण किया करते थे । दैवयोग से इनके पास एक गंडकी सुत सालग्राम जी थे उन्हीं से, बिना जाने, मांस तौल २ के बेचा करते थे; एक साधु ने देखकर कहा कि " ये तो सालग्राम जी हैं, इनसे मत तोलो, लाओ हम इनकी पूजा करेंगे ।" श्रीसधन जी ने दे दिया । संत लाके पंचामृत आदिक

संस्कार करके पूजा करने लगे; परंतु वह पूजा प्रभु को प्रिय न लगी; साधु से रात्रि स्वप्न में आज्ञा दी कि हमको उसी सधना के यहां पहुंचा दो, वह हमारा नाम गुण सप्रेम गाता है सो सुनते उसके हृदय की सचाई पर हम रीझ गये हैं " ॥

(४९१) टीका। कवित्त (८४२–४९१ = ३५१)

लेकै आयौ साधु, " मैं तौ बड़ौ अपराध कियौ, कियौ अभिषेक सेवा करी पै न भाई है। ए तौ प्रभु रीझे तोपै जोई चाहौ सोई करौ, गरो भरि आयो सुनि, मति बिसराई है॥ वेई हरिउर धारि, हारि दियौ कुलाचार, चलैं जगन्नाथ देव, चाह उपजाई है॥ मिल्यौ एक संग संग जात, वेसुगात सब, तब आप दूर दूर रहैं जानि पाई है ॥ ३९५ ॥ (६२९ – ३९५ = २३४)

वार्त्तिक तिलक।

स्वप्न में प्रभु की आज्ञा सुन साधु सालग्राम जी को ले श्रीसधन जी के पास आकर कहने लगे कि "मैंने बड़ा अपराध किया तुम्हारे हां से सालग्राम जी को ले गया; अभिषेक प्रतिष्ठा कर पूजा सेवा किया परंतु प्रभु को प्यारी न लगी; ये तुझी पर रीझे हैं; मुझे स्वप्न में आज्ञा दी कि 'हमको उसी के पास पहुंचा दो;' सो लो चाहे मांस तोलो चाहे पूजा करो " ऐसा सुनते ही श्रीसधन जी प्रेम में मग्न हो गये, देह की सुधि बुधि भूल गई, गद्गद कंठ, रोमांच

शरीर, हो गये। अब तो कुलाचार और घर को तज प्रभु को हृदय में धारण कर श्रीसालग्राम जी को ले, जगन्नाथ जी के दरशन को चल दिये। और भी यात्री मिले, उन्हीं के साथ साथ चले; पर वे सब इनको कसाई जान ग्लानि युक्त हुए; तब उनके मनका जान उन सब का संग छोड़ आप प्रथक हो चले॥

(४९२) टीका। कवित्त (८४२-४९२ = ३५०)

आयौ मग गाँव, भिक्षा लेन इक ठांव गयो, नयो रूप देखि कोऊ तिया रीझि परी है। "बैठौ याही ठौर करौ भोजन" निहोरि कह्यौ; रह्यौ निसि सोय, आई "मेरी मति हरी है॥ लेवो मोकों संग;" गरौ काटौ तौन होय रंग, बूझी और, काटी पति ग्रीव, पै न डरी है। कही "अब पागौ मोंसों," "नातौ कौन तोसों मोंसों;" सोर करि उठी "इनि मार्‍यौ" भीर करी है॥ ३९६॥ (६२९ – ३९६ = २३३)

वार्त्तिक तिलक।

मार्ग में एक ग्राम मिला, वहां एक घर में आप भिक्षा लेने गये एक स्त्री उनका नवीन रूप देख, रीझ के, काम वश हो, बोली कि "तुम आज यहां ही भोजन करो, रहो," आपने वैसाही किया; वह स्त्री रात्रि में समीप आ कहने लगी "मेरी मति तुम पर रीझ गई है, मुझको अपने साथ ले चलो;" आप बोले कि "जो तू गला भी काट डाले तो भी मैं तुझसे प्रेम नहीं कर सकता।"

उस दुष्टाने और का और ही समझ, भय छोड़, अपने पति का कंठ काट डाला; और, वह आ के कहने लगी कि अब मेरा अंग संग करो।" श्रीसधन जी ने उत्तर दिया कि "मैं तो पहिले ही नकार चुका हूं, तुझसे मुझको क्या संबंध है?" तब तो रो रो पुकारने लगी कि "अपने साथ मुझे ले चलने के हेतु इसने मेरे पति को मार डाला है!" सुनकर गांव के सब लोग इकट्ठे हो गये॥

(४९३) टीका। कवित्त (८४२-४९३=३४९)

हाकिम पकरि पूछै: कहै हँसि "मार्‍यौहम," डार्‍यौ सोच भारी, कही "हाथ काटि डारियै"। कट्यौ कर, चले, हरि रँग माँझमिले, मानी जानी "कछु चूक मेरी" यहै उर धारियै॥ जगन्नाथ देव, आगे पालकी पठाइ लेन, सधना सो भक्त कहाँ? चहूं न बिचारियै। चढ़ि आये प्रभु पास, सुपनौ सो मिट्यौ त्रास, बोले "दै कसौटी हूं" पै भक्ति बिस्तारियै॥ ३९७॥ (६२९-३९७=२३२)

वार्त्तिक तिलक।

जब वह दुष्टा स्त्री यों चिल्लाने पुकारने लगी कि "यह मेरे पति को मार, मुझे साथ चलने को कहता है," तब इस बात को सुन उस गांव के अधिपति ने सधन को पकड़वा के पूछा। आपने हँसकर कह दिया कि "हां हमने मारा है।" परंतु उस ग्रामाधिप को इनकी भक्ति लक्षण देख के पूरा २ निश्चय नहीं हुआ, बड़ा भारी सोच करने लगा कि अब मैं क्या करूं।" इस्से इनका बध तो नहीं

किया, केवल हाथ कटवा कर छोड़ दिया ।

हाथ कटने पर श्रीजगन्नाथजी के दरशन को चल दिये। कुछ मन में दुःख मलीनता नहीं आई, वरंच प्रेम भक्ति की ओर अधिक मन झिला; बिचार पूर्वक हृदय में यह निश्चय किया कि " मेरा कोई पूर्वका * पाप था सो प्रभु ने यह दंड दिवाकर शुद्ध करदिया (चौ०) नहिं दुख यह रघुपति कै दाया । कर्म भुगाय छुटावत माया " ।

उधर श्रीजगन्नाथ देव जी ने सधन जी के लेने को आगे अपनी पालकी भेजी। पंडे लोग " सधन " भक्त को बूझते पूछते आकर बोले कि "पालकी पर चढ़कर चलो;" आप प्रभु की पालकी बिचारि नहीं चढ़ते थे, पंडे प्रभु की आज्ञा अमिट सुना, बलात्कार उस्पर चढ़ाकर ले आये । श्रीसधन जी आ के प्रभु के दरशन कर साष्टांग प्रणाम करने लगे; उसी क्षण हाथ ज्यों के त्यों हो गये, सब दुःख स्वप्न सरीखा मिट गया । जगन्नाथ जी कृपापूर्वक बोले कि " सधन ! तुमने यथार्थ कसौटी दे दी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, दुःख में तुम्हारा मन मलीन नहीं हुआ अब आनन्द-पूर्वक लोक में हमारी भक्ति विस्तार करो " ॥

---

* " वह पद भाषा द्वैक जैसे तैसे गावत है, हम तुम्है गावत हैं सदा बेद बानी सों । हम निर्मल गंगाजल सों अन्हवावैं तुम्हें, तुम रीझे सधना के बधना के पानी सों ॥ " " जौलौं मेरे सन्तन में राखै जाति-भेद सदा, तौ लौं कहौ कैसे वह पावै सुखसार है । मेरो साधु-नीच पद पंकज न धोयो जौलौं, तौलौं सब शास्त्रन को पढ़बोई भार है " ॥

श्रीजगन्नाथ जी ने विप्र रूप से कृपाकर श्रीसदन जी को बता दिया कि पूर्व जन्म में तुम काशी में विप्र पंडित थे। एक दिन एक गऊ एक कसाई के घर से भागी जाती थी। पीछे कसाई दौड़कर आया। पूछने से तुमने हाथों से बता दिया। वही गाय यह स्त्री हुई और वही कसाई उस्का यह पति, जिस्को पूर्व जन्म के पलटे उसने गला काटा है। और उसी दोष से तुम्हारे हाथ मात्र काटे गए। मैं अपने भक्तों को कर्म भुगाके पाप छुड़ाही देता हूं॥

(४९४) टीका। कवित्त (८४२—४९४=३४८)

श्रीगुसाईं काशीश्वर (कास्येश्वर) जी।

श्रीगुसाईं कासीश्वर, आगे अवधूत वर, करि प्रीति नीलाचल रहे, लाग्यौ नीकौ है। महा प्रभु कृष्णचैतन्य जू की आज्ञा पाय, आये वृन्दावन, देखि भायौ भयौ हीको है॥ सेवा अधिकार पायौ, रसिक गोविन्दचन्द चाहत मुखारबिन्द, जीवनि जो जीको है। नितही लड़ावैं, भावसागर बढ़ावैं, कौन पारावार पावै, सुनै लागै जग फीको है॥ ३९८॥ (६२९–३९८=२३१)

वार्त्तिक तिलक।

गुसाईं श्रीकास्येश्वर जी प्रथम दशा में श्रेष्ठ अवधूत वृत्ति वेष युक्त थे; विचरते हुए श्रीजगन्नाथ क्षेत्र में आये; वहां रहना आप को बहुत अच्छा लगा; सो वहां रह गये। तदनंतर अपने गुरु महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य जी की आज्ञा पाकर श्रीवृन्दावन में आए।

श्रीवृन्दावन को देख हृदय की प्यारी अभिलाषा पूर्ण हुई। रसिकचन्द "श्रीगोबिन्द जी" की सेवा पूजा का अधिकार पाया। जीवका जीवन आधार जो श्रीमुखार्विन्द, सो उस

का दरशन कर नित्य ही लाड़, प्यार, प्रेम करते। प्रेम भाव का समुद्र आप के हृदय में बढ़ता था, उस को वर्णन कर कौन पार पा सकता है ? आपकी दशा का बखान सुन सब संसार फीका लगने लगता है ॥

(४९५) मूल । छप्पय (८४२-४९५ = ३७७)

करुना छाया, भक्ति फल, ए कलिजुग पादप रचे ॥ जती राम रावल्लि[1], स्याम[2], षोजी[3], संत-सीहा[4] । दल्हा[5], पद्म[6], मनोरथ[7], राँका[8], द्यौगू[9] जप जीहा ॥ जाड़ा[10], चाचा[11] गुरु, सवाई[12], चाँदा[13] नापा[14] । पुरुषोत्तमसौं साच, चतुर[15], कीता[16], मनकौ जिहि मेट्यौ आपा ॥ मति सुन्दर, धीधांगैभ्रम संसार चाल नाहिन नचे । करुना छाया, भक्ति फल, ए कलियुग पादप रचे ॥९७॥ (२१३-९७ = ११६)

वार्तिक तिलक ।

वृक्षों में दो वस्तु विशेषतः पर हित की ही होती हैं, एक फल दूसरे छाया । सो करुणा रूप छाया, और भागवत विषेभक्ति रूप फल, इनके संयुक्त, इन संतों को कलियुग में भगवान् ने वृक्ष रूप रचा; अर्थात् सब परमार्थी हुए (चौ०) " संत विटप, सरिता, गिरि, धरनी । पर हित हेतु सबनि की करनी " । नाम । यती रामरावल्ल जी, श्याम जी, खोजी जी, संत सीहा जी, दल्हा जी, पद्म जी, मनोरथ जी, रांका

जी, श्रीराम नाम जपनेवाले धोगू जी, जाड़ा जी, चाचागुरु जी, सवाई जी चांदा जी, नापा जी, सत्य सत्य यथा नाम तथा गुण युक्त पुरुषोत्तम जी और चतुर जी, जिन्होंने अपने मन का ममत्व और अपनपौ मिटा डाला ऐसे कीता जी, इन सब भक्तों की अति सुन्दर बुद्धि हुई; और परिश्रम रूपी "धीधांग" अर्थात् मृदंगके तालके साथ, संसार के गति में ये भक्त नहीं नाचे ॥

१ श्रीरामरावल्ल जी
२ श्री श्याम जी
३ श्री खोजी जी
४ श्री सोहा जी
५ श्री लहा जी
६ श्री पद्म जी
७ श्री मनोरथ जी
८ श्री रांका जी
९ श्री धोगू जी
१० श्री जाड़ा जी
११ श्री चाचागुरु जी
१२ श्री सवाई जी
१३ श्री चांदा जी
१४ श्री नापा जी
१५ श्री पुरुषोत्तम जी
१६ श्री चतुर जी
१७ श्री कीता जी

(४९६) टीका। कवित्त (८४२-४९६ = ३४६)

श्री खोजी जी।

"खोजी" जू के गुरु हरि भावना प्रवीन महा, देह अंत समै बांधि घंटा सो प्रमानियै। "पावैं प्रभु जब तब बाजि उठै, जानौ यही;" पाये, पै न बाजी, बड़ी चिंता मन आनियै॥ तन त्याग बेर नहीं हुते, फेरि पाछे आये, वाही ठौर पौढ़ि

देख्यौ, आंब पक्यौ मानिये। तोरि, ताके टूक किये, छोटौ एक जंतु मध्य, गयौ सो विलाय, बाजि उठी जग जानिये ॥ ३९९ ॥ (६२९–३९९ = २३०)

वार्तिक तिलक।

"खोजी" जी के श्रीगुरुदेव जी श्रीराम जी के ध्यान भावना में बड़ेही प्रवीन थे। देहके त्याग समय में प्रथम से एक घंटा बंधाकर उनने यह कह रक्खा कि "जब हम प्रभु के समीप प्राप्त होंगे, तब यह घंटा आपसे आप बजने लगेगा।"

तदनंतर आपने शरीर त्याग किया। परन्तु घंटा नहीं बजा। सब शिष्यों सेवकों के मन में बड़ी चिंता हुई। श्रीखोजी जी, अपने स्वामी जी के तन त्याग समय न थे; कुछ पीछे आये। सबों ने यह वृत्तांत सुनाया। तब खोजी जी ने गुरुको खोज निकाला अर्थात् जहां पड़के गुरु जी ने देह तजा था, आप वहां लेटके, देखा कि 'ऊपर एक बहुत सुन्दर पका हुआ आम का फल लगा है'। मन में विचार कर, उस फल को तोड़, दो टुकड़े कर, देखें तो एक छोटा सा जीव उसमें था। सो वह उसी क्षण बिला गया। और वह घंटा स्वयं बजने लगा। सब ने जान लिया कि आम्र में के जन्तु का शरीर तज अब श्री गुरु महाराज श्रीरामधाम में प्राप्त हुए॥

(४९७) टीका। कबित्त (८४२–४९७ = ३४५)

शिष्य की तौ जोग्यताई नीके मन आई, अजू गुरुकी

प्रबल ऐपै नेकु घट क्यों भई। सुनौ याकी बात "मन वातवत गति" कही सही ले दिखाई; और कथा अति रसमई॥ 'वे तौ प्रभु पाय चुके प्रथम,' प्रसिद्ध; पाछे आछ्यौ फल देखि हरि जोग उपजी नई। इच्छा सो सफल स्याम भक्त वश करी वही, रही पूर पच्छ सब विथा उर की गई॥ ४०० ॥ (६२९-४०० = २२९)

वार्तिक तिलक।

इस प्रसंग में शिष्य "खोजी" जी की अति श्रेष्ठता मन में निश्चय हुई, परंतु गुरु जी की प्रबलता में किंचित मात्र न्यूनता क्यों हुई? इसकी वार्ता सुनिये, कि "मनकी गति वायु से भी अति चपल" भगवान् ने गीता आदिक ग्रन्थों में कहा है; सो आपने प्रत्यक्ष दिखाकर शिष्यों को उपदेश दिया कि मन ऐसा प्रबल है इससे सदा सावधान रहना चाहिये। ("अन्ते या मतिः सा गतिः")

और दूसरी अति रसमई वार्ता यह है कि 'खोजी जी के गुरु जी तौ ध्यानयोग से प्रभु को प्राप्त हो ही चुके थे,' यह प्रसिद्ध है; परंतु पीछे बहुत अच्छा फल देख यह प्रभु के अर्पण योग्य है यह नवीन इच्छा उत्पन्न हो गई; सो इच्छा सफल करने के लिये भक्तवत्सल श्यामसुन्दर अंतरयामी ने स्वयं लीला किया किंचित ही काल में जो पूर्व प्रतिज्ञा थी सो पूर्ण कर सब के हृदय का शोक दुःख नाश किया॥

(४९८) टीका। कवित्त (८४२-४९८=४४३)

श्री "रांका" जी, श्री "वांका" जी।

रांका पति, वांका तिया, बसैं पुरपंडर में उर मैं न चाह नेकु रीति कछु न्यारियै। लकरीन बीनि करि, जीविका नवीन करैं; धरैं हरि रूप हिये, ताही सों जियारियै॥ विनती करत नामदेव कृष्णदेव जूसों, कीजै दुख दूर कही 'मेरी मति हारियै। चलौ लै दिखाऊं, तब तेरे मन भाऊं," रहे बन छिपि दोऊ थैली मगमाँझ डारियै॥ ४०१॥ (६२९-४०१ = २२८)

वार्त्तिक तिलक।

"रांका" नाम के हरिभक्त, उनकी पतिनी का "बांका" नाम पड़ा। दोनों अनुरागी "पंडरपुर" में बसते थे। प्रभु को छोड़ हृदय में किसी पदार्थ की चाह किंचित् भी न थी। लोकोत्तर निहकिंचन रीति थी, सूखी लकड़ियां बन से बीन चुन लाते, बेचकर नित्य नवीन जीविका करते थे। हृदय में श्रीहरि के रूप का ध्यान धरे रहते थे। मुख्य जीवन वही था। इन दोनों की दशा देख, श्रीनामदेव जी ने श्री कृष्णदेव जी से विनय किया कि "हे कृपालो! इनका दुःख नाश करिये"।

प्रभु बोले कि "मेरी मति इन से हारगई। कुछ लेते ही नहीं, तो क्या करूं? चलो, मैं तुमको इनकी सब दशा दिखाऊं, तब तुमको मैं अच्छा लगूंगा"। प्रभु नामदेव जी को साथ लिवाकर एक थैली भर स्वर्ण मुद्रा (मुहर)

मार्ग में डालकर वन में छुप रहे।

(४९९) टीका। कवित्त (८४२–४९९ = ३४३)

आये दोऊ तिया पति, पाछे बधू आगे स्वामी, औचकही मग मांझ संपति निहारियै। जानी यों जुवति जाति, कभूं मन चलि जात, याते बेगि संभ्रम सों धूरि वापै डारियै॥ पूछी "अजू! कहा कियौ भूमि मै निहुरि तुम?" कही वही बात, बोली "धनहूं विचारियै"। कहै मोसों रांका ऐपै बांका आज देखी तुही, सुनि प्रभु बोले बात सांची है हमारियै॥ ४०२॥ (६२९–४०२ = २२७)

वार्तिक तिलक।

आगे रांकाभक्त जी पीछे उनकी पत्नी दोनों उसी मार्ग में आये, भक्त जी ने औचकही देखा कि मार्ग में द्रव्य थैली पड़ी है। बिचार किया कि 'स्त्री की जाति है कहीं मन चल न जाय, इस को ले न ले;' इसलिये बहुत शीघ्रता से धूल लेकर उसपर डाल दी। उनकी पत्नी आकर पूछने लगीं कि "आप ने यहां पर झुक कर क्या किया है?"

आपने वही बात कह दी। श्रीभक्तिवती जी बोलीं कि "आपके मन में अभी धनका ज्ञान बनाही है?" सुनकर, प्रसन्न हो, कहने लगे कि मुझको तो सब "रांका" कहते हैं, परंतु आज मैंने जाना कि तू सच "बांका" है। दोनों

श्रीकबीर जी, श्रीनामदेव जी और श्रीबांकापति रांका जी उसी (पन्द्रहवीं) शताब्दि में विराजमान थे।

की दशा देख बचन सुन नामदेव जी से प्रभु बोले कि "देखो, मेरी बात सत्य है कि नहीं ?" शान्ति और विराम की जय ।

(५००) टीका । कवित्त (८४२–५०० = ३४२)

नामदेव हारे हरिदेव कही और बात, जो पै दाह गात, चलौ लकरी सकेरियै । आये दोऊ बीनबे को देखी इकठौरी ढेरी ढेहू मिलि पावै तऊ हाथ नहिं छेरियै ॥ तब तौ प्रगट श्याम ल्याये यों लिवाय घर, देखि मूंडू फोरौ कह्यो ऐसे प्रभु फेरियै । बिनती करत कर जोरि अंग पट धारौ भारौ बोझ पर्यौ लियौ चीर मात्र हेरियै ॥ ४०३ ॥ (६२९ –४०३ = २२६)

वार्तिक तिलक ।

जब भगवान् ने कहा कि "देखो मेरी ही बात सच्ची निकली," तब श्रीनामदेव जी ने हार माना । फिर प्रभु बोले कि "जो कदाचित इनके परिश्रम का तुम्हें बड़ाही संताप है, तो चलो दोनों जने लकड़ियां चुनचुन कर इकट्ठा रख दें, ये दोनों जने ले जायगे परिश्रम थोड़ा होगा " ।

श्रीकृष्णचन्द्र और नामदेव जी ने ऐसाही किया; जब रांका बांका लकड़ी चुनने आये तब देखें कि बहुतसी लकड़ी इकट्ठी धरी है । दोनों ने उन लकड़ियों में हाथ तक नहीं लगाया, यहां तक कि दो लकड़ी भी कहीं इकट्ठी मिलें तो दूसरे की धरी हुई जान वे उसको नहीं छूते थे; तब श्याम-सुन्दर जी प्रगट होकर दोनों को घर में लिवालाये और प्रभु

तथा नामदेव जी ने कहा कि "तुम हठ छोड़कर कुछ तो लो"। भक्तों ने प्रार्थना की कि "जो आप से कुछ चाहना कर लेवै, सो प्राणी तो 'मुँड़फोरा' है, वह भक्त काहे को है, और ये नामदेव जी भी 'मुँड़फोरा' सरीखे आपको बन बन में फिराते हैं!" यह सुन, नामदेव जी ने हाथ जोड़ विनय किया कि "प्रभुकी आज्ञा मान भला एक एक वस्त्र तो शरीर में धारण कर लीजिये," तब तो दोनों के सीस पर बड़ाही भार पड़ा, पर वस्त्रमात्र ले लिया। ऐसे अचाही निस्काम भक्तों की जय॥

(५०१) मूल। छप्पै (८४२-५०१ = ३४१)

पर-अर्थ-परायन भक्त ये, कामधेनु कलियुग के॥
लक्ष्मन, लफरा[२], लड्डू[३], संत[४] जोधपुर त्यागी। सूरज[५], कुंभन[६] दास, बिमानी[७], खेम[८] विरागी॥ भावन[९], विरही[१०] भरत, नफर[११], हरिकेस[१२], लटेरा। हरिदास[१३], अयोध्या चक्रपानि[१४] दियो सरजू तट डेरा॥ तिलोक[१५], पुषर[१६], विज्जुली[१७], उद्धव[१८], बनचर बंश जे। पर-अर्थ-परायन भक्त ये, कामधेनु कलियुग के॥ ९८॥
(२१३-९८ = ११५)

वार्तिक तिलक।

कलियुग के ये श्रीभगवद्भक्त, पराये के अर्थ साधने में तत्पर और कामधेनु के समान मनोर्थ के दाता हुये—

(१) श्री लक्ष्मणभक्त जी	(११) श्री नफर जी
(२) श्री लफरा जी	(१२) श्री हरिकेश जी, लटेरा वंश में उत्पन्न
(३) श्री लड्डू जी	
(४) श्री स्यामी सन्त * जी जोधपुर के	(१३) श्री हरिदास जी, और
	(१४) श्री अयोध्या सरयू तट-वासी चक्रपानि जी
(५) श्री सूरजभक्त जी	
(६) श्री कुंभनदास जी	(१५) श्री तिलोक सुनार जी
(७) श्री विमानी जी	(१६) श्री पुखरदी जी
(८) श्री खेमवैरागी जी	(१७) श्रीविज्जुली जी, और
(९) श्री भावन जी	(१८) श्रीउद्धव जी, वनचर
(१०) श्री बिरही भरत जी	(हनुमान वंश) में उत्पन्न

(५०२) टीका । कवित्त (८४२-५०२ = ३४०)

श्रीलड्डू भगत जी।

लड्डू नाम भक्त, जाय निकसे विमुख देश, लेसहू न संत-भाव जानैं, पाप पागे हैं। देवीकों प्रसन्न करैं, मानुस को मारि धरैं, लै गये पकरि, तहां मारिवे को लागे हैं॥ प्रतिमा कों फारि, विकरार रूप धारि आई, लै कै तरवार मूंड़ काटे, भीजे वागे हैं॥ आगे नित्य करै, दृग भरे साधु पांव धरैं;

* कोई इस्का अर्थ यों करते हैं कि संतने जोधपुर को त्यागा॥ श्रीभक्तमाल जी की नामावली नहीं प्राप्त होने से नामों का ठीक पता लगाने में जो कठिनता होती है, भक्तमाली ही लोग जानते हैं॥

ऐसे रखवारे जानि जन अनुरागे हैं ॥ ४०४ ॥ (६२९ –४०४ = २२५)

वार्त्तिक तिलक।

लड्डूनाम के भगवतभक्त विचरते हुए बंगाले प्रवेश के एक बिमुख ग्राम में पहुंचे; वहां के लोगों की संतों में भावभक्ति किंचित् भी न थी, केवल पाप में ही परायण थे। मनुष्य को मार बलिदान देकर देवीको प्रसन्न करते थे। लड्डूभक्त जी को अकेले देख, पकड़ कर, खड्ग ले, मार डालने को उद्यत हुए। उनकी दुष्टता देख श्रीदेवी जी ने अपनी प्रतिमा फोड़, विकराल रूप धारण कर, प्रगट हो, वही खड्ग छीन, कई दुष्टों के सीस काट डाले, और दुष्ट भाग गये। तब देवी श्री लड्डूभक्त जी के आगे नेत्रों में प्रेम के आंसू भर कर नांचने लगी; संत के चरणों को पकड कर प्रसन्न किया। सब देवी देवताओं के अंतरयामी श्रीराम जी को ऐसे रक्षा करनेवाले जानकर, भक्त लोग सानुराग भजते हैं कृपा को समझ प्रेम मगन होते हैं। सब ग्रामबासी भगवद्भक्त हो गए।

यह कथा पूर्वही में (पृष्ठ ७७९) प्रसंगतः लिखी जा चुकी है। "कुर्बानी" तथा जीवबलि की प्रथा विचित्रही बात है। " इन दुहूं राह बिगाड़ी साधो, इन दुहुँ राह बिगारी। आपस में दोउ (हिन्दू मुसलमान) लड़े मरत हैं, भेद काहू नहिं जाना॥ " " महरम हो सो जानै साधो, ऐसा देश हमारा है। कर नयनों दीदार, महल में प्यारा है॥ "

श्रीसन्त जी।

(५०३) टीका। कवित्त (८४२–५०३ = ३३९)

सदा साधु-सेवा अनुराग रंग पागि रह्यौ, गह्यौ नेम भिक्षा ब्रत गांव गांव जाय कै। आये घर संत पूछैं तिया सो यों "संत कहां?" "संत चूल्हे मांझ" कही ऐसे, अलसाय कै॥ बानी सुनि जानी, चले मग, सुख-दानी मिले, "कहौ कित हुते?" सो बखानी उर आय कै। "बोली वह सांच, वही आंचही कौ ध्यान मेरे," आनि गृह फेरि किये मगन जिंवाय कै॥ ४०५॥ (६२९–४०५ = २२४)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीसंतभक्त जी सदा साधु सेवा के अनुराग में पगे प्रति ग्राम ग्राम में जा, भिक्षा कर, नियम से संत सेवा करते थे। एक दिवस भिक्षा के लिये किसी ग्राम में गये थे, इनके पीछे गृह में संत जन आए। आपकी स्त्री से, जो कि बड़ीही बिमुख और संसारिनि थी, सन्तोंने पूछा कि "संतभक्त जी कहां गये?" उसने अलसाकर रुच्छता से कहा कि "चूल्हे में गये" वैष्णव इसकी बाणी सुन, अति विमुख जान, वहां से चल दिये। मार्ग में बिबिधि प्रकार की भिक्षा लिये हुए संतसुखदाता श्रीसंत भक्त जी मिले और दण्डवत किया। संतों ने पूछा कि "कहां गये थे?" तब, प्रभु प्रेरणा से आपके शुद्ध हृदय में जो स्त्रीने कहा था सो वार्ता भास गई, बोले कि "प्रभो! जो स्त्री ने कही है वह वार्ता सत्य

है, मुझे सदा अग्नि और चूल्हाही का ध्यान बना रहता है, अर्थात् चूल्हा में अग्नि जला के रसोई बनाय प्रभु को भोग लगाय कब संत प्रसाद पावैं। प्रभो! कृपा करि चलिये।" सुन कर प्रसन्न हो लौट आये। आपने प्रीतिपूर्वक भोजन करा, संतों को आनन्द में मग्न कर दिया॥

श्रीतिलोकसुनार जी।

(५०४) टीका। कवित्त (८४२–५०४ = ३३८)

पूरब में ओक, सो "तिलोक" हो सुनार जाति, पायौ भक्तिसार, साधु सेवा उर धारियै। भूप के विवाह सुता, जोरी एक जेहरि कौं, गढ़िबे कों दियौ, कह्यौ "नीकें कै संवारियै"॥ आवत अनंत संत औसर न पावै किहूं, रहे दिन दोय, भूप रोस यों सँभारियै। "ल्यावौ रे पकरि;" ल्याये; "छाड़िये मकर कही, नेकु रह्यौ काम, आवै नातों मारि डारिये॥ ४०६॥ (६२९–४०६ = २२३)

वार्त्तिक तिलक।

पूर्व देश में रहनेवाले, जाति के सुनार श्रीत्रिलोक जी सारांश भक्ति को प्राप्त होकर तन मन से संत-सेवा में परायण थे। उस नगर के राजा की कन्या का बिवाह था, अतः एक जोड़ी जेहरि (चरणभूषण) बनाने के लिये राजा ने द्रव्य देकर आज्ञा दी कि "बहुत अच्छे प्रकार से बनाकर लाओ।"

आपके घर नित्य अनेक मूर्ति संत आया करते; उनकी सेवा करने में आप लगे रहते थे; जेहरि बनाने के लिये कुछ

औसर ही नहीं मिलता था, उसमें हाथ तक नहीं लगा सके। जब बिबाह के दो ही तीन दिन रह गये, तब राजा ने सक्रोध आज्ञा दी कि "उसको पकड़ लावो"। लोगों ने ऐसाही किया, आपने राजा से कहा कि "मुझे छोड़ दीजिये, उसमें थोड़ासा काम रह गया है; जो उस दिन में न लाऊं तो मुझे मरवा डालियेगा, मेरे प्राण ले लीजियेगा" ॥

(५०५) टीका। कवित्त (८४२—५०५ = ३३७)

आयो वही दिन, कर छुयौ हूं न इन, "नृप करै प्रान बिन," बन मांझ छप्यौ जाय कै। आये नर चारि पांच, जानी प्रभु आंच, गहि लियौ, सो दिखायौ सांच, चले भक्त भाय कै ॥ भूप कौ सलाम कियौ, जेहरि कौ जोरौ दियौ, लियौ कर, देखि नैन छोड़ैं न अघाय कै। भई रीझि भारी, सब चूक मेटि डारी; धन पायौ ले मुरारी, ऐसे बैठे घर आय कै ॥ ४०७ ॥ (६२९—४०७ = २२२)

"सलाम" سلام = जोहार, दण्डवत, प्रणाम।

वार्तिक तिलक।

वही दिन (अर्थात् राजकन्या के बिवाह का दिन) आ गया; पर इनने तो उस भूषण के बनाने के लिये सुवर्ण को हाथ से भी नहीं छुआ! तब मन में बिचार किया कि "राजा मार ही डालेगा" इस्से जाकर वन में छिप रहे।

राजा के चार पांच जन इनके घर आये। कृपासिंधु प्रभु ने अपने भक्त को सकुटुम्ब ताप युक्त जान, तिलोक भक्त का

रूप धारण कर, अपनी चातुर्य्य से जेहरि बना कर, राज सेवकों को दिखा, वह चरणभूषण ले, अपने भक्त के अनुरूप आये, और राजा को जुहार कर, जेहरि का जोड़ा दिया। राजा हाथ में लेकर देखतेही मोहित होगया, देखने से नेत्र तृप्त न हुए; बड़ाही प्रसन्न हुआ, विलंब करने की सब चूक क्षमा कर, बहुतसा धन दिया। भगवान लाकर भक्तके घर में विराजमान हुए।

(५०१) टीका। कवित्त (८४२–५०१ = ३४१)

भोरही महोछौ कियौ, जोई मांगै सोई दियौ, नाना पकवान रस खान स्वाद लागे हैं। संत को सरूप धरि, लै प्रसाद गोद भरि, गये तहां "पावै जू तिलोक गृह पागे हैं"॥ "कौन सो तिलोक?" "अरे दूसरो तिलोक मै न" वैन सुनि चैन भयौ, आये निसि रागे हैं। चहल पहल धन भर्‌यो घर देखि दर्‌यो प्रभु पदकंज जानौ मेरे भाग जागे हैं॥ ४०८॥ (६२९–४०८ = २२१)

वार्त्तिक तिलक।

तिलोकरूपी प्रभु ने प्रातःकाल होते बड़ाही महोत्सव किया; जिसने जाकर जो वस्तु मांगी उसको वही दिया, नाना प्रकार के पकवान अनूप रस स्वाद से भरे हुए, साधु ब्राह्मणों को खिलाये॥

तदनंतर एक साधु का रूप धर प्रसाद लेकर वन में जहां भक्त जी बैठे थे वहां जा, प्रसाद देकर, प्रभु ने कहा कि "हम तिलोक के घर गये थे, उनने हमको पवाकर और बिदा भी

है, सो तुम पाओ, ।" भक्त जी ने पूछा कि "महाराज ! कौन तिलोक ?" आप बोले कि "अरे, इसी नगर का सुनार भक्त, और अन्यत्र तिलोकी में दूसरा ऐसा कौन है ?"

संतके वचन सुन आपको बड़ाही आनन्द हुआ, प्रभु की कृपा कौतुक बिचार प्रसाद पाकर सानुराग रात्रि में घर आये; देखें तो सुखमय चहल पहल हो रहा है और घर धन धान्य से भरा है; जान लिया कि श्री लक्ष्मी जी भगवान् के पदपंकज इस घर में आये; मेरे बड़ेही भाग्य उदय हुए। प्रभु भक्तवत्सल की जय ॥

---

(५०७) मूल । छप्पय (८४२-५०७ = ३३५)

अभिलाष अधिक पूरन करन, ये चिंतामनि चतुरदास ॥ सोम[1], भीम[2], सोमनाथ[3], विको[4], बिशाखा[5], लमध्याना[6] । महदा[7], मुकुंद[8], गनेस[9], त्रिविक्रम[10], रघु[11], जग जाना ॥ बालमीकि[12], वृद्धव्यास[13], जगन[14], झाँझू[15], वीठल[16] आचारज । हरिभू[17] लाला[18], हरिदास[19], वाहवल[20], राघव[21] आरज ॥ लाखा[22], छीतर[23], उद्धव[24] कपूर[25], घाटम[26], घूँरी[27], कियौ प्रकास ॥ अभिलाष अधिक पूरन करन, ये चिंतामनि चतुरदास ॥ ९९ ॥

(२१३-९९ = ११४)

वार्त्तिक तिलक।

अपने अनुकूल जनों की अतिशय अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, चिंतामनि के समान, परमार्थ पथ में चतुर, ये सब भगवतदास हुए। नाम। सोमभक्त, भीमभक्त, सोमनाथ जी, बिको जी, विसाखा जी, लमध्यान जी, महदा जी मुकुंदभक्त जी, गनेशभक्त जी, त्रिविक्रम जी, रघुभक्त जी-इन सबों को सम्पूर्ण जगत जानता था। वाल्मीकभक्त जी, वृद्धव्यास जी, जगन जी, झांझू जी, विट्ठल आचारज जी, हरिभू जी, लाला जी, हरिदास जी, बाहवल जी, परमश्रेष्ठ राघवदास जी, लाखौ जी, छीतर जी, उद्धव जी, कपूरभक्त जी, घाटम जी, घूरी जी, इन सबोंने अपने सुयश जग में प्रकाश किये॥

१ श्रीसोम जी	८ श्री मकुन्द जी
२ श्रीभीम जी	९ श्री गणेश जी
३ श्रीसोमनाथ जी	१० श्री त्रिविक्रम जी
४ श्रीबिक्को (विकोदी) जी	११ श्रीरघुजी(जगतविख्यात)
५ बिशाखा जी	१२ श्री बालमीक जी
६ श्रीलमध्यान * ध्यानजी	१३ श्रीबृद्धव्यास जी
७ श्री महदा जी	१४ जगन जी

* लमध्यानी, ऐसा एक नाम कोई बताते हैं कोई लखमन ध्यानी कोई हरिभू, और कोई हरिभूला, ऐसा नाम बताते हैं।

१५ श्रीझांझु जी	२२ लाखा जी	इनने
१६ श्रीबिट्ठल आचार्य्य जी	२३ श्रीछीतर जी	जग में
१७ श्रीहरिभू जी ❀	२४ श्री उद्धव जी	अपने
१८ श्रीलाला ❀ जी	२५ श्रीकपूर जी	यश
१९ श्रीहारदीस जी	२६ श्रीघाटम जी	प्रकाश
२० श्रीबाहबल जी		
२१ श्रीराघव जी आर्य्य (श्रेष्ठ)	२७ श्री घूरी जी	किये ।

श्रीघाटम जी ।

श्रीघाटम जी, जाति के मीना, जयपुर राज्य के खोड़ी (घोड़ी) ग्राम के रहने वाले, गुरु बचन में विश्वास और श्री हरि में भक्ति कर उत्तम पद को प्राप्त हो कृतार्थ हुए। प्रथम उनकी बटमारी ठगी चोरी की वृत्ति रहा करती थी, भाग्य वश कुछ विवेक आया, किसी हरिभक्त का सुसंग हुआ, उनने शिक्षा दी कि "बटमारी चोरी ठगी छोड़ दो"। घाटम ने कहा "इसी धंधे से तो मेरी जीविका है।" संत ने कहा कि "अच्छा, चार वार्ता हमारी ग्रहण करो (१) सत्य बोलना (२) साधु सेवा (३) भगवत अर्पण किये पीछे कुछ खाना (४) और भगवत आरती में जा मिलना" । सुनते ही चारों बातें अंगीकार कर भगवत मंत्र भी ग्रहण किया । श्रीगुरु के चारो उपदेश पर आप अति दृढ़ हो गये ।

एक दिन साधु आये घर में कुछ भी न था खलिहानसे गेंहू चुरा लाकर संतों को भोजन कराया परंतु भय था कि

"पद के चिन्हों को देखने से मैं खलिहानवाले के हाथों से कहीं अभी पकड़ा न जाऊं"। इतने ही में आंधीयुक्त पानी बरसा, आप की चिन्ता मिट गयी; आपने निश्चिंतता से संतों की सेवा की।

एक समय श्रीगुरु ने भगवत उत्सव में घाटम को बुलाया उस समय में भी पास में कुछ न था; चिंता युक्त हो, चोरी करने राजा के गृह में आये, द्वारपालों ने पूछा, तब आपने सत्य उत्तर दिया कि "मैं चोर हूं 'घाटम' मेरा नाम है" वे सब इनका उत्तम वेष देख समझे कि "इनने अपने तईं हँसी ही से चोर कहा है," कुछ न बोले। ये जाकर घुड़साल से एक उत्तम काले (मिश्की) रंग के घोड़े पर चढ़कर चले, अश्वरक्षकों ने रोका, फिर उनसे भी सत्य ही कहकर चले आये। श्रीगुरुगेह की ओर चले।

संध्या समय एक नगर में किसी हरिमंदिर में आरती होती थी वहां घोड़ा बांध कर आरती दर्शन कर भजन करने लगे। यहां राजा के यहां उस घोड़े की ढूंढ पड़ी।

बहुत से लोग घोड़े के पांव का पता लेते उसी मंदिर के द्वार पर पहुँचे। भक्तवत्सल प्रभु ने उस घोड़े का श्वेत रंग कर दिया, घाटम चढ़ के जब बाहर निकले, तब राज भृत्य लज्जित हो सोचने लगे कि घोड़ा तो वैसाही है पर रंग इसका दूसरा है, अब राजा हमको दंड देगा; श्रीघाटम जी उनको भयभीत देखकर दयायुक्त बोले कि "वह चोर मैं हूं और यह घोड़ा भी वही है; प्रभु ने मेरी रक्षा हेतु

कृपाकर यह रंग बदल दिया है। तुम चिंता न करो, तुम्हारी रक्षा के हेतु मैं घोड़े समेत तुम्हारे राजा के पास चलता हूं।" यह कहकर राजा के पास आ, आपने अपना सब वृत्तांत सुना दिया। चरणों पर पड़ राजा ने बहुत सा द्रव्य और वह घोड़ा भी श्रीघाटम जी को दिया; सब ले जाकर आपने श्रीगुरु जी को अर्पण किया। श्रीहरिगुरु भक्ति का ऐसा प्रभाव और प्रताप है॥ जय॥

---

(५०८) मूल। छप्पय (८४२-५०८=३३४)

भक्त पाल दिग्गज भगत, ए थानाइत सूर धीर॥
देवानंद[१], नरहरियानंद[२], मुकुंद[३], महीपति[४], संतराम[५]
तमोरी। खेम[६], श्रीरंग[७], नंद, विस्नु बीदा[१०] वाजू[११] सुत
जोरी॥ छीतम[१२], द्वारिकादास[१३], माधव[१४], मांडन[१५],
रूपा[१६], दामोदर[१७]। भल नरहरि[१८], भगवान[१९], वाल,
कान्हर[२०], केसो[२१], सोहैं घर॥ दास प्रयाग[२२], लोहंग[२३],
गुपाल[२४] नागू[२५] सुत, गृह. भक्तभीर। भक्तपाल
दिग्गज भगत ए थानाइत सूर धीर॥ १००॥
(२१३-१००=११३)

वार्तिक तिलक।

ये महा भगवद्भक्त दिग्गजों के समान स्थानाधिपति, परम सूर, धीर, सब भक्तोंके पालनेवाले हुए—

१ श्रीदेवानन्द जी	१४ श्रीमाधव जी
२ श्रीनरहरियानन्द जी	१५ श्रीमाण्डन जी
३ श्रीमुकुन्द जी	१६ श्रीरूपा जी
४ श्रीमहीपति जी	१७ श्रीदामोदरजी
५ श्रीसन्तराम जी	१८ श्रीनरहरिजी
६ श्रीखेम जी	१९ श्रीभगवानजी
७ श्रीश्रीरंग जी	२० श्रीवाल जी
८ श्रीनन्द जी	२१ श्रीकान्हरजी
९ श्रीबाजू जी	२२ श्रीकेशो जी (१७–२२: भले प्रकार अपने घर ही में शोभा पाने वाले।)
१० श्रीबींदा जी	२३ श्रीप्रयागदास जी
११ श्रीविष्णु जी (१०–११: बाजू जी दोनों पुत्र)	२४ श्रीलोहंग जी
१२ श्रीछीतम जी	२५ श्रीनागू जी
१३ श्रीद्वारिकादास जी	२६ श्रीगोपालजी श्रीनागूके पुत्र

इन सब संतसेवी भक्तों के गृह में भक्तोंकी भीर बनी ही रहा करती थी॥

(५०९) मूल। छप्पय (८४२–५०९ = ३३३)

बद्रीनाथ, उड़ीसे, द्वारिका सेवक सब हरि-भजन पर॥ केसौ[1], पुनि हरिनाथ[2], भीम[3], षेता[4], गोविंद[5] ब्रह्मचारी। बालकृष्ण[6], बड़भरथ[7], अच्युत[8], अपया[9] ब्रतधारी॥ पंडा गोपीनाथ[10], मुकुंदा[11], गज-पति[12], महाजस। गुननिधि[13], जसगोपाल[14], देइँ भक्तनि

कौ सरवस ॥ श्रीअंग सदा सानिधि रहैं कृत पुन्य पुंजभल भाग भर ॥ बद्रीनाथ, उडीसे, द्वारिका सेवक सब हरिभजन पर ॥ १०१ ॥ (२१३-१०१ = ११२)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीबद्रिकाश्रम (श्रीबद्रीनाथ) जी में, उड़ीसा जगदीश क्षेत्र में, और श्रीद्वारिकापुरी में, चारोंधाम में श्रीजगन्नाथ जी और श्रीरनछोरटीकम जी के ये सेवक हरिभजन में परायण हुए ॥

१ श्रीकेशव जी		८ श्रीभीम जी	
२ श्रीहरिनाथ जी		९ श्रीखेता जी	
३ श्रीब्रह्मचारीगोविन्दजी	इन सन्तोंने सन्त सेवा का व्रत धारण किया	१० श्रीगोपीनाथपंडाजी	ये महा यशयुक्त हुए
४ श्रीबालकृष्ण जी		११ श्रीमुकुन्द जी	
५ श्रीबड़भरत जी		१२ श्रीगजपति जी	
६ श्रीअच्युत जी		१३ श्रीगुननिधि जी	
७ श्रीअपया जी		१४ श्रीजसगोपाल जी	

इन्होंने हरिभक्तों को अपना तन मन धन सरवस्व अर्पण किया, तीनों धाम में ये १४ भक्त भगवतश्रीअंग के सदा समीप रहनेवाले, कृतपुण्य पुंज, भले प्रकार भाग्य से भरे हुए, तेज पुंज हुए ।

श्रीरुद्रप्रताप गजपति जी ।

(५२०) टीका । कवित्त (८४२-५२० = ३२२)

श्रीप्रताप रुद्र गजपति कै बखान कियौ, लियौ भक्ति

भाव महा प्रभु पै, न देखहीं। किये हू उपाय कोटि, ओटि लै संन्यास दियौ, हियौ अकुलायौ "अहो ! किहू मोको पेखहीं"॥ जगन्नाथ रथ आगे नृत्य करैं मत्त भये नीलाचल नृप पाय पर्यौ, भाग लेखहीं। छाती सों लगायौ, प्रेम सागर बुड़ायौ, भयौ अति मन भायौ, दुख देत ये निमेखहीं॥ ४०९॥ (६२९–४०९ = २२०)

वार्तिक तिलक

श्रीरुद्रप्रताप गजपति जी, नीलाचल पुरुषोत्तम पुरी के राजा थे। महा प्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य जी से भक्तिभाव मंत्र ग्रहण कर शिष्य हुए। महा प्रभु ने इनकी प्रेम परीक्षा लेने के अर्थ किसी दिन से इनकी ओर देखना छोड़ दिया। आपने कोटिन उपाय किये तथापि प्रभु ने नहीं ही देखा; तब संन्यास वेष का ओट लिया, और हृदय में अत्यंत आकुलता हुई कि "मुझे किसी प्रकार से श्रीगुरु कृपा दृष्टि से देखें।"

एक दिवस प्रेम से मत्त हुए महा प्रभु जी श्रीजगन्नाथ जी के रथ के आगे नृत्य करते थे; भाग्य समझ, प्रेम से विह्वल हो, साष्टांग पड़ राजा ने चरणों को पकड़ लिया; महा प्रभु जी ने सत्य प्रेम देख, उठाकर छाती में लगा प्रेमानन्द के समुद्र में मग्न कर दिया। राजा का मनोरथ अति पूर्ण हुआ।

श्रीहरि गुरु थोड़े ही काल अपने वियोग का दुख देकर फिर सदा के लिये अखंड सुख दे देते हैं॥

(५११) मूल । छप्पय (८४२ – ५११ = ३३१)

हरि सुजस प्रचुर कर जगत मैं, ये कवि जन अतिसय उदार ॥ बिद्यापति[1], ब्रह्मदास[2], वहोरन[3], चतुर बिहारी[4]। गोविंद[5], गंगा[6], रामलाल[7] बरसानियां मंगलकारी ॥ प्रियदयाल[8], परसराम[9], भक्त भांई[10], षाटी[11]कौ । नन्दसुवन की छाप कवित "केसौ[12]" कौ नीकौ। आस करनें[13], पूरनें[14] नृपति, भीषमें[15], जन दयाल[16], गुन नहिन पार ॥ हरि सुजस प्रचुर कर जगत मैं ये कवि जन अतिसय उदार ॥ १०२ ॥ (२१३ – १०२ = १११)

वार्तिक तिलक ।

श्रीहरि का सुजस जगत में प्रचार करनेवाले ये सब कवि जन अतिसय उदार हुए; नाम—

विद्यापति जी, ब्रह्मदास जी, बहोरन कवि जी, बड़े चतुर बिहारी कवि जी, श्रीगोबिन्द सखा जी, गंगाराम कवि जी, वरसानियां श्रीरामलाल जी, मंगलमय हरिचरित्र गानकर इनने जीवों को मंगलमय करदिया, प्रिय दयाल जी, परसराम जी, भक्त भाई जी खाटीक जी; जिन्हों में "नन्दसुअन" की छाप पड़ी है ऐसे कवित्त श्रीकेशव जी के अच्छे हुए। आसकरन जी राजा, पूरन जी राजा, भीषम जी, जन दयाल जी; ये सब अपार गुणों से युक्त हुए॥

१ श्रीविद्यापति जी	९ श्रीपरशुराम जी
२ श्रीब्रह्मदास जी	१० श्रीभक्ताभई जी
३ श्रीबहोरन जी	११ श्रीखाटिक जी
४ श्रीबिहारी जी	१२ श्रीकेशव जी
५ श्रीगोविन्दस्वामी जी	१३ श्रीआसकरन जी
६ श्रीगंगाराम जी	१४ श्रीपूरन जी
७ श्रीरामलाल जी	१५ श्रीभीषम जी
८ श्रीप्रियदयाल जी	१६ श्रीजनदयाल जी

श्रीगोविंदस्वामी जी।

(५१२) टीका। कवित्त (८४२-५१२=३३०)

गोवर्द्धननाथ साथ खेलैं, सदा झेलैं रंग अंग, सख्य भाव हियें, गोविंद सुनाम है। स्वामी करि ख्यात, ताकी बात सुनि लीजे नीके, सुने सरसात नैन, रीति अभिराम है॥ खेलत हो लाल संग, गयो लौट दाव लैकै, मारी खैंचि गिल्ली देखि मन्दिर मैं स्याम है। मानि अपराध, साधु धक्का दै निकारि दियौ, मति सो अगाध, कैसे जाने वह वाम है॥ ४१०॥ (६२९-४१०=२१९)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीविठ्ठल गुसाईं के शिष्य श्रीगोविन्द स्वामी नाम से विख्यात, हृदय में सदा सख्य भाव रखकर, "श्रीगोवर्द्धन-नाथ जी" से अंगसे अंग मिलाय रंग झेलने और साथ

खेलनेहारे, अभिराम रीतिवाले की वार्ता भलीभांति सुनिये, कि जिसको सुनकर नेत्र प्रेमसे सजल सरस हो जाते हैं।

आपको बाल्यावस्था ही से श्रीकृष्णचन्द्र जी प्रगट होकर दर्शन देते बरंच साथ खेला करते थे। एक दिन नन्द-लाल जी के साथ गिल्ली डंडा खेलते थे। प्रथम प्रभु का दाव था सो गोबिन्द सखा को बहुत दौड़ाया, जब इनका दाव आया, तब नन्दलाल भगे; ये पीछे दौड़े। श्याम सुन्दर को मन्दिर में देख, खैंचकर गिल्ली मारी। मन्दिर में एक साधु पुजारी थे, सो उनने इनका बड़ा अपराध मान इनको धक्का देकर निकाल दिया। क्योंकि सख्य रस भरी अगाध मति को, वह प्रेम से बिमुख, कैसे जान सकता?

आप भारी गवैये और महान कवि थे, अष्ट छाप में इनकी गिनती थी। इनकी "कदम्बखण्डी" नाम उपवन अब तक गोवर्द्धन जी के पास विद्यमान है।

(३५१) टीका। कवित्त (८४२-५१३ = ३२९)

बैठ्यौ कुंड तीर जाय, निकसैगो आय, वन दिये हैं लगाय, ताको फल भुगताइयै। लाल हिय सोच पर्‍यौ, कैसे भर्‍यौ जात, वह अर्‍यौ मगमांझ, भोग धर्‍यौ पै न खाइयै॥ कही श्रीगुसाईं जूकों, मोकों ये न भाई कछू, चाहो जौ खवावो, तौ पै वाकों जा मनाइयै। "वाके हुतौ दाव मोपै, सो तौ भाव जान्यौ नहीं, कही मोसों बातें सो कुमारै बेगि ल्याइयै" ॥ ४११ ॥ (६२९-४११ = २१८)

वार्त्तिक तिलक।

जब उस साधू ने आपको धक्का देकर निकाल दिया, तब आप (श्रीगोबिन्द सखा जी) जा के कुंड तीर बैठे; और ऐसा कहने लगे कि " बन में जाने को तो इस मार्ग से निकलेगा सही, जो अपने बैरागी को मुझे धक्का देने में लगा दिया, तिसका पलटा फल मैं भुगता ही लूंगा "। अब तो लाल जी के हृदय में बड़ा ही सोच पड़ा कि "वह सखा अपनी दाव लिये बिन नहीं छोड़ैगा वह मार्ग ही में बैठा है "। आपके आगे भोग धरागया, परंतु ग्रहण नहीं किया। प्रगट होकर श्री गुसाईं जी से कहा कि " मुझको यह भोग वस्तु कुछ नहीं अच्छी लगती, जो मुझे खिलाया चाहौ तौ मेरे सखा को जा कर मना लाओ, क्योंकि उसका दाव था सो मैंने नहीं दिया, तब उसने आकर मुझे गुल्ली मारी; उस भाव को तो साधु जान सका नहीं, उसको दुर्वचन कहकर धक्का दे दिया, वह क्रोध में भरा है; सो प्रिय कुमार को आप शीघ्र लिवा लाइये "।

(५१४) टीका। कवित्त (८४२–५१४ = ३२८)

बन बन खेले बिन वनत न मोको नेंकु, भनत जु गारि अनगनत लगावैगो। सुधि बुधि मेरी गई, भई बड़ी चिंता मोहि, ल्याइये जू ढूढ़ि कहूँ चैन ढिग आवैगो ॥ भोग जे लगायें, मैं तौ तनक न पाये, रिस वाकी जब जाय, तब मोहूँ कछु भावैगो। चले उठि धाय, नीठ नीठ कै मनाय ल्याये, मंदिर मे खाय मिलि, कही गरें लावैगो ॥ ४१२ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीलाल जी ने गुसाईं जी से कहा कि "देखिये, बन२ प्रति खेले बिना, मेरा मन प्रसन्न नहीं ही होता; और वह बन मार्ग में बैठा मुझे गालियां दे रहा है; जो उधर मैं जाऊंगा तो अनेक चोट लगावैगा; मेरी तो सब सुधि बुधि भूल गई; बड़ी ही चिंता उत्पन्न हुई है, मेरे मित्र को ढूंढ़ लाइये तब मेरा मन प्रसन्नता युक्त हो, आपने जितने भोग लगाये हैं मैंने उसमें से अभी किंचित् भी नहीं पाया; उसकीरिस शांत हो तब मुझे भी कुछ अच्छा लगेगा"। श्री गुसाईं जी सुनते ही दौड़े; बड़ी कठिनता और बड़े यत्न से आपको मनाकर लाये, कहा कि "तुम्हारे प्रेमी ने कहा है कि आकर मेरे साथ मिलकर खाय और गले २ मिले"। ऐसाही किया ॥

(५१९) टीका। कवित्त (८४२-५१९=३२७)

गये हे बहिर-भूमि, तहां कृष्ण आये झूमि, करी बड़ी धूम, आक-बौंडिनि सौं मारि कै। इनहूं निहारि उठि मार दई वाही सों जु, कौतुक अपार, सख्य भाव रससार कै ॥ माता मग चाहै, बड़ी बेर भई, आई तहां, "कहां बार" लाई ओट पाई उर धारि कै ॥ आयौ यों विचार अनुसार सदाचार कियौ, लियौ प्रेम गाढ़, कभूं करत सँभारि कै ॥ ४१३ ॥ (६२९-४१३=२१६)

वार्त्तिक तिलक ।

एक दिवस, गोबिन्द स्वामी जी बहिरभूमि (शौच

के लिये गये थे, वहां ही प्रेमानन्द से झूमते श्री कृष्ण चन्द्र जी आकर, उसी दशा में आक (मदार) के फलों से आपको मार २ कर बड़ी धूम मचाने लगे; आप ने देखा, तब उठकर उन्हीं फलों से श्री कृष्णचन्द्र को भी आप मारने लगे। दोनों तख्य भाव रससार में छके हुए अपार कौतुक मचा रहे थे, गोबिन्द सखा जी की माता, बड़ा विलंब जान मार्ग देख रही थीं, फिर बिचारने लगीं कि "कहां विलंब लगाया ?"

वहां ही आईं; उनको देख श्री कृष्णचन्द्र छिप गये; आप उसकी ओट (बहाने) से बचे। और तब मन में बिचार आया; शौच की सदाचार क्रिया की। इस प्रकार के गाढ़े प्रेम से छके, श्रीबड़भागी जी कभी सँभार से, और कभी बे सँभाले अपने मित्र के संग खेला करते थे॥

(५१६) टीका। कवित्त (८४२—५१६ = ३२६)

आवत हो भोग महा सुन्दर, सुमंदिर कों, रह्यौ मग बैठि, कही "आगें मोहि दीजियै"। भयौ कोप भार, थार डारि, जा पुकार करी, भरी न अनीति जात, सेवा यह लीजियै॥ बोलि कै सुनाई, "अहो कहां मन आई ?" तब बोलि कै बताई, "अजू बात कान कीजियै। पहिले जु खाय, बन मांझ उठि जाय, पाछे पाऊं कहां धाय, सुनि मति रस भीजियै॥ ४१४॥ (६२९–४१४ = २१५)

वार्त्तिक तिलक।

एक दिन की बात है कि अति सुन्दर भोग का थार

रसोई करनेवाले मन्दिर में लिये आते थे; गोविन्द सखा जी मार्ग में बैठे बोले कि "पहिले मुझे पाने को दे दीजिये"। सुनकर पूजा रसोई करनेवालों को बड़ा क्रोध हुआ, थाल को पटक, जा, गुसाईं जी से पुकार किया कि "ऐसी सेवा आप लीजिये, इस लड़के की अनीति हमसे नहीं सही जाती"। गुसाईं जी ने आप से पूछा कि, "लाला! तेरे मन में क्या आई?" इनने उत्तर दिया "अजी महाराज! मेरी बात सुनिये, यह आपका लाला पहले खाकर बन में चला जाता है, मैं पीछे पाने को पाता हूं पीछे जाता हूं; तब वह मुझे मिलता नहीं, ढूंढ़ता फिरता हूं"। सुनकर गुसाईं जी की मति प्रेमरस से भींग गई। उस दिन से थार मंदिर में पहुँचते ही इधर इन को भी पवा देते थे॥

---

(५१७) मूल। छप्पय (८४२-५१७=३२५)

जे बसे बसत मथुरा मंडल, ते दया दृष्टि मो पर करौ॥ रघुनाथ[1], गोपीनाथ[2], रामभद्र[3], दासू स्वामी[4]। गुंजा माली[5], चित उत्तम[6], बीठल[7], मरहट्ठ निहकामी॥ जदुनंदन[9], रघुनाथ[10], रामानंद[11], गोबिन्द[12], मुरलीसोती[13]। हरिदास मिश्र[14], भगवान[15], मुकुंद[16], केसौ[17] दंडौती॥ चतुरभुज[18], चरित्र[19], विष्णुदास[20], वेनी[21], पद मो सिर धरौ॥ जे बसे बसत॰

मथुरा मंडल, ते दया दृष्टि मो पर करौ ॥१०३॥

(२१३–१०३ = ११०)

वार्त्तिक तिलक।

जो भक्त मथुरा मंडल में आगे बसे हैं और जो अब बसते हैं, ते सब मुझपर दया दृष्टि कीजिये। और कृपाकर मेरे सीस पर अपने चरण कमल रखिये।

१ श्री रघुनाथ भगत जी
२ श्री गोपीनाथ भगत जी
३ श्री रामभद्र भगत जी
४ दासूस्वामी जी
५ गुंजामाली जी
६ चित्त उत्तम जी,
७ वीठल जी,
८ निष्कामभक्तमरहठ जी
९ यदुनंदन भगत जी
१० दूसरे रघुनाथ भगत जी
११ रामानन्द भगत जी
१२ गोबिन्द भगत जी
१३ मुरली श्रोत्री जी
१४ हरिदास मिश्र जी
१५ भगवान भगत जी
१६ मुकुन्द भगत जी
१७ केशौ दंडवती जी
१८ चतुर्भुज जी
१९ चरित्र भक्त जी
२० विष्णुदास जी
२१ बेनीभक्त जी

श्री गुंजामाली जी और आपकी पुत्रबधू।

(५१८) टीका। कवित्त (८४२–५१८ = ३२४)

कही नाभा स्वामी आप, गायौ मैं प्रताप, संत बसे ब्रज बसैं सो तौ महिमा अपार है। भये गुंजा माली "गुंजा" हार धारि नाम पर्यौ, कर्यौ वास "लाहौर मै" आगे

सुनौ सार है ॥ सुतबधू विधवा सों बोलि के सुनायो "लेहु धन पति गेह श्रीगोपाल भरतार है । देवो प्रभु सेवा," मांगै नारि वार वार यहै डारे सब वारि यापै गनै जग छार है ॥ ४१५ ॥ (६२९–४१५ = २१४)

वार्तिक तिलक ।

आप श्रीनाभा स्वामी जी ने उन संतों का प्रताप कहा, सो मैं भी गान करता हूं कि जो भक्त श्रीब्रज में बसे और बसैं उनकी महिमा अपार है । गुंजा (चौंटली, घुँघची) की माला धारण करने से गुंजा माली नाम पड़ गया; आप लाहौर में हुए; आप की सारांस कथा आगे सुनिये । आपकी पुत्रबधू (पतोहू) विधवा हो गई, आपने उसको बुलाके कहा कि "पतोहू! तुम यह अपने पति का घर और धन लो, तुम्हारे भर्ता यही सेवा मूर्ति श्रीगोपालजी हैं, इन अपने भर्त्ता को लो।" वह भक्ति संस्कार युक्त थी ही, इससे प्रभु सेवा ही वारंवार मांगकर कहने लगी कि मुझे प्रभु की सेवा ही दीजिये और जगत् की वस्तु तो सब क्षार हैं मैं इनपर सब नौछावर करती हूं, और कुछ नहीं लूंगी"।

(५१९) टीका । कवित्त १ (८४२–५१९ = ३२३)

दई सेवा वाहि, और घर धन तिया दियौ, लियौ ब्रज वास; वाकी प्रीति सुनि लीजियै । ठाकुर विराजैं, तहां खेलैं सुत औरनि के, डारैं ईंटा षोहा, पर्यो प्रभुपर, षीझिये ॥ दिये वे विडारि, धर्यो भोग, पै न खात हरि, पूछी कही वेई आवैं तब ही तौ जीजिये । कह्यौ रिस भरि "धूरिनीकी, भोर

ढारै भरि, पावौ," अब हाहा करि पायौ, ल्याई रीझिये ॥ ४१६ ॥ (६२९–४१६ = २१३)

वार्तिक तिलक।

इस प्रकार उसकी भक्ति देख श्रीगोपाल मूर्ति उसी को दिया; और धन घर सब अपनी स्त्री को दे, आप आकर श्री वृन्दावन में बसे। अब उस पतोहू की प्रीति सुनिये, उसकी भक्ति देख प्रभु श्रीमूर्त्ति से खाने और उसके साथ बोलने भी लगे। एक दिन जहां ठाकुर बिराजे थे वहां औरों के लड़के ईंटा धूल डालते खेलते थे सो वह मिट्टी धूरी प्रभु के ऊपर पड़ी, तब इनने क्रोध कर लड़कों को भगा दिया। पीछे, भोग का थार रक्खा, सो प्रभु ने कुछ न पाया। इनने प्रार्थना कर पूंछा तो आप बोले कि "वे लड़के आवें खेलें तभी मुझको प्रसन्नता होगी"। इनने प्रणय कोप कर कहा कि "जो धूरि ही आप को प्यारी है तो बड़े भोर लड़कों को बुला के डलवा दूंगी, अभी खाइये"। बहुत प्रार्थना किया और लड़कों को बुला लाई, तब आपने भोजन किया और बहुत प्रसन्न हुए॥

(५२०) मूल। छप्पय (८४२–५२० = ३२२)

कलिजुग जुवती जन भक्त राज महिमा सब जानै जगत ॥ सीता, झाली, सुमति, सोभा, प्रभुता,

उमा[6] भटियानी।गंगा[7], गौरी[8], कुँवरि[9] उवीठां[10], गोपाली[11], गणेशदेरानी[12] ॥ कला[13], लषा[14], कृतगढ़ौ[15] मानमती[16], सुचि सतिभामा[17] ॥ जमुना[18], कोली[19], रामा[20], मृगा[21], देवा[22], दै भक्तन विश्रामा ॥ जुं[23]गजेवा[24], कीकी[25], कमला[26], देवकी[27], हीरा[28], हरिचेरी[29], पोषेभगत। कलिजुग जुवती जन भक्त राज महिमा सब जानै जगत ॥१०४॥

(२१३–१०४ = १०९) "देवा दे" अर्थात् देनेवाली।

वार्तिक तिलक।

कलियुग में ये युवती जन भक्त राज हुईं, इनकी महिमा कीर्ति सब जगत जानता है-श्री सीता सहचरी जी, झाली जी, सुमति जी, शोभा जी, भटियानी उमा जी, गंगा जी, गौरा जी, कुँवरि, उवीठा जी, गोपाली जी, रानी गनेसदेई जी कला जी, लखा जी, कृतगढ़ौ जी, मानमती जी, परम पवित्र सतिभामा जी, जमुना जी, कोली जी, रामा जी, मृगा जी, देवाजी देई, ये सब हरिभक्तन को बिश्राम देने वाली हुई। जेवा जी, कीकी जी, कमला जी, देवकी जी, हीरा जी, हरि चेरी जी, इन्हों ने भोजन वस्त्रादिकों से हरि भक्तों की सेवा की ॥

१ श्रीसीता सहचरी जी	५ श्रीप्रभुता जी
२ श्रीझाली जी,	६ श्रीउमाभटियानी जी
३ श्रीसुमति जी	७ श्रीगंगा जी
४ श्रीशोभा जी	८ श्रीगौरी जी

९ श्री कुँवरी जी	२० श्री रम्मा जी
१० श्री उबीठा जी	२१ श्री मृग जी
११ श्री गोपाली जी	२२ श्री देवा जी
१२ श्री रानी गणेशदेई जी	२३ श्री जेवा जी } जुगजेवा
१३ श्री कला जी	२४ श्री जेवा जी }
१४ श्री लखा जी	२५ श्री कीकी जी
१५ श्री कृतगढ़ौ जी	२६ श्री कमला जी
१६ श्री मानमती जी	२७ श्री देवकी जी
१७ श्री सतिभामा जी	२८ श्री हीरा जी
१८ श्री जमुना जी	२९ श्री हरिचेरी जी
१९ श्री कोली जी	(दे = देनेवाली)

(५२१) टीका। कवित्त (८४२–५२१ = ३२१)

श्रीगनेशदेई रानी।

"मधुकरसाह" भूप भयौ, देश "औंड़छे" कौ, रानी सो "गनेसदेई" काम बांकौ कियौ है। आवैं बहु संत सेवा करत अनंत भांति, रह्यौ एक साधु खान पान सुख लियौ है॥ निपट अकेली देखि बोल्यौ "धन थैली कहां ?" "होय तौ बताऊं सब तुम जानौ हियौ है। मारि जांघ छुरी लखि लोहू बेगि भागि गयौ, भयौ सोच "जानै जिनि राजा बंद दियौ है"॥ ४१७॥ (५२१–४१७ = २१२)

वार्तिक तिलक

श्रीमधुकरसाह जी ओड़छे के राजा थे इनकी रानी

परम श्रीरामभक्ता श्रीगणेशदेई जी ने भक्तिपथ, में बड़ाही बांका काम किया; आप अति प्रीति तथा अनेक भांति से सन्त सेवा करती थीं; इस हेतु बहुत संत आया करते थे। किसी समय खान पानका सुख पाकर एक वेषधारी (नाम मात्र का साधु) आपके यहां रह गया। आपके यहां वैष्णव मात्र को रोक (परदा) न था।

एक दिन आप अकेली बिराजी थीं, उसी समय में वह वेषधारी एक छूरी लिये आया और बोला कि "धनकी थैली कहां है ?" आपने उत्तर दिया "मेरे पास जो धन आता है सो आपलोगों की सेवामें लगजाता है, थैली नहीं है, होय तौ बताऊं, मेरे हृदय को आप जानते हैं मैं धन नहीं रखती"। तथापि उस लोभी ने फिर मांगा और नहीं पाया; तब जंघे में छुरी मार दी! रुधिर चलने लगा, देखकर वह दुष्ट भाग गया।

श्रीगणेशदेवी जी को यह सोच हुआ कि "कहीं राजा न जानें, नहीं तो इस को दंड देंगे;" घाव को बांध दिया॥

(५२२) टीका। कवित्त (८४२-५२२=३२०)

बांधि नीकी भांति, पौढ़ि रही, कही काहूसो न, आयौ ढिग राजा, "मति आवौ, तियाधर्म है"। बीते दिन तीन जानी वेदन नवीन कछू, "कहियै प्रवीन मोसों खोलि सब मर्म है" ॥ टारी बार दोय चारि, नृप के बिचार पर्‍यौ, कर्‍यौ समाधान "जिन आनौ जिय भर्म है"। फिर्‍यौ

आस पास भूमि पर तन रासकरी, भक्तिकौ प्रभाव छाड़ि तिया पति सर्म है ॥ ४१८ ॥ (६२९–४१८ = २११)

वार्त्तिक तिलक।

श्री भक्तिभागिनी जी उस घाव को अच्छे प्रकार बांधकर पड़रहीं, किसी से कुछ कहा नहीं; जब आपके समीप में आपके पति मधुकरसाहजी आये तब बोलीं कि "आप मत आइये मुझे स्त्री धर्म हुआ है"। तीन दिन बीते शुद्धता बिचारि फिर आकर राजा ने आप को पड़ी ही देखा, जाना कि "कोई नवीन व्यथा है"। आप से पूछने लगे कि "हे प्रवीन प्रिये! जो व्यथा होय सो सब मर्म खोल कर कहो"। सुनकर आपने दो चार बेर टालमटाल किया; राजा ने नहीं माना; तब सत्य सत्य सब वृत्तांत कह कर समाधान करने लगी कि "आप कोई मन में भ्रम लाकर बैष्णवों में अभाव मत कीजियेगा, यह कोई मेरा कर्महीं ऐसा था सो भी भोगही गया"।

राजाजी भी तो परम भागवत थे, सुनकर आप की क्षमा और भक्ति पर न्यौछावर हो, परिक्रमा कर भूमि पर पड़के प्रणाम किया, श्री भक्ति का प्रभाव हृदय में धारण कर स्त्री पति की लज्या छोड़ श्री गणेशदेई जी में भक्ति का गौरव मानने लगे।

श्रीगणेशदेई जी की एक और उत्तम कथा जो बुंदेलखण्ड देश के सब सज्जनों को विदित है सो सुनिये। श्री

मधुकर साह जी श्रीकृष्णचन्द्र जी के उपासक थे; और श्रीगणेशदेई जी राजाधिराज श्रीरामचन्द्र जी की उपासना युक्त थीं। इससे जब तब श्रीअयोध्या जी आती थीं। एकबार श्रीअयोध्या जी आईं, प्रेमबस कुछ दिन रह गईं; श्रीमधुकरसाह जी का, भक्ति संबंध से, आप में बड़ा स्नेह था; इस्से कई पत्र लिखे; परंतु धाम के स्नेह बिवशता से नहीं गईं।

तब राजा ने लिख भेजा कि "अब अपने प्रभुको साथही लिवाकर आना"। पत्र बांचके गणेशदेई जी ने प्रभु से प्रार्थना कियी कि "देखिये, राजा क्या लिखते हैं। निदान कुछ दिन श्रीअवध में और रहीं फिर यह बिचार किया कि प्रभुके तो मेरे सरीखी बहुत किंकरी हैं किस किस के साथ में जांयगे; परंतु मैं भी ऐसे ओंड़छे नहीं जाऊंगी; श्री सरयू जी में प्रवेश कर प्राण त्याग कर दूंगी"। ऐसा निश्चय कर स्नान के बहाने से श्रीसरयू जी में डूब ही तो गईं। उसी क्षण भक्तवत्सल कृपासिंधु श्रीरघुनंदन जी श्यामसुन्दर किशोरमूर्ति मणिविग्रह से आपके अंक में आगये। और गणेश देई जी को तीर पर खड़ी कर दिया। फिर उस क्षण का प्रेमानन्द श्रीगणेशदेई जी का कौन कह सकता है? जहां आपकी स्थिती थी वहां प्रभुको लाकर विराजमान कर महा उत्सव किया। दान द्रव्य लुटाना बाजा बजवाना इत्यादिक आनन्द की धूम मची और सब वृत्तांत श्रीमधुकर साहजी को पत्र द्वारा निवेदन किया।

राजा सुनकर बहुत द्रव्य और सेना समेत श्री अवध आकर प्रभु के दरसन कर कृतार्थ हुआ। प्रभुकी प्रेरणा से श्री गणेशदेईजी ने श्री जानकीजीवनजी को इस प्रकार से ओड़छे लिवा ले चलीं कि पुष्य नक्षत्र में वहां से प्रभु पधारे; जब तक पुष्य नक्षत्र रहा तब तक पधारे फिर २६ दिन मार्ग में एक स्थल में स्थिति रही फिर सत्ताइसवें दिन पुष्य नक्षत्र में चले इसी भांति केवल पुष्य पुष्यही में ओड़छे गये वहां अकथनीय आनन्द उत्सव से विराजमान हुए। पीछे आप के विग्रहअनुरूप श्रीजानकीजी श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनूमानजी आदिकों की मूर्तियां प्रतिष्ठा करके समीप में पधराई गईं। कोई आगे बैठता नहीं था।

श्रीगणेशदेईजी का यह नियम था कि पूजा अपने हाथ से करतीं थीं। वहां के बहुत लोगों के मन में ऐसी शंका होती थी कि "ये प्रभु रानी को स्वयं सरयूजी में नहीं मिले, किन्तु कोई यत्न से ले आई हैं।" इस वार्ता को श्रीजानकीवल्लभजी जान गये तब एक दिवस एकांत पूजा में रानी को आज्ञा दिया कि "बहुत काल से खड़ी हो बैठजाओ"। आप प्रणाम कर बोलीं, "कृपानिधे! आप खड़े हैं, किंकरी कैसे बैठ जाय?" प्रभु बोले हम बैठ जायँ फिर उठेंगे नहीं।" आप बोलीं "जैसी इच्छा होय।" सबों के विश्वास के लिये आप के ऊपर कृपा कर श्रीजानकीवल्लभजी वीरासन से बैठ गये। अब तक विराजेही हैं। ओड़छा नगर किसी हेतुसे उजड़ गया परन्तु

प्रभु और आपके सेवक वर्ग मात्र अब तक रहते हैं। श्रावण शुक्लतृतीया को आप झूलन पर विराजते हैं तब विशेष उत्सव मेला होता है॥

यह कथा मैंने अपने भक्तमाल शिक्षक श्री ५ रामरसरंग मणिजी से सुनकर लिखी है॥

---

(५२३) मूल। छप्पय (८४२–५२३ = ३१९)

हरि के संमत जे भगत ते दासनि के दास॥ नर वाहन[१], वाहन वरीस[२], जापू[३], जैमल[४], वींदावत[५] जयंत[६], धारा[७], रूपा[८], अनभैई[९], उदारावत[१०]॥ गंभीरे अर्जुन[११], जनार्दन[१२], गोविंद[१३], जीता[१४]॥ दामोदर[१५], सांपिले[१६], गदा[१७], ईश्वर[१८], हेमविदीता[१९]। मयानंद[२०] महिमा अनंत, गुंढीले[२१], तुलसीदास[२२]॥ हरि के संमत जे भगत ते दासनिके दास॥ १०५॥ (२१३–१०५ = १०८)

वार्तिक तिलक।

श्री भगवान के अनुकूल जो भगत हैं; मैं उन भक्तों के दासों का दास हूं।

श्री नर वाहन जी, श्री वाहनवरीश जी, श्री जापू जी, श्री जयमल जी, श्री बीन्दावत जी, श्री जयंत जी, श्री धारा जी, श्री रूपा जी, श्री अनुभवी जी, उदारावत जी, श्री गंभीरे अर्जुन जी, श्री जनार्दन जी, श्री गोविन्द जी,

जीता जी, श्री दामोदर जी, श्री सांपिले जी, श्री गदाभक्त जी, श्री ईश्वर भक्त जी, हेम बिदीता जी, अपार महिमा वाले श्री मयानन्द जी, श्री गुढ़ाले जी, श्री तुलशीदास जी।

इन सब भक्तों के दास का मैं दास हूं।

१ श्री नरबाहन जी	१२ श्री जनार्दन जी
२ श्री बाहनबरीश जी	१३ श्री गोविन्द जी
३ श्री जापू जी	१४ श्री जीता जी
४ श्री जैमल जी	१५ श्री दामोदर जी
५ श्री बिन्दावत जी	१६ श्री सांपिले जी
६ श्री जयन्त जी	१७ श्री गदाभगत जी
७ श्री धारा जी	१८ श्री ईश्वर जी
८ श्री रूपा जी	१९ श्री हेमविदीता जी
९ श्री अनुभवी जी	२० श्री मयानंद जी
१० श्री उदारावत जी	११ श्री गुढ़ाले जी
११ श्री गंभीरे अर्जुन जी	२२ श्री तुलसीदास जी (दूसरे)

(५२४) टीका। कबित्त (८४२–५२४ = ३१८)

श्रीनरवाहनजी।

रहैं भैगावँ नावँ, नरवाहन साधु सेवी, लूटि लई नाव जाकी, बंदीखानै दियौ है। लौंडी आवै देन कछू खायबे को, आई दया, अति अकुलाई, लै उपाय यह कियो है॥ बोलो राधाबल्लभ" औ लेवो "हरि वंश" नाम; पूछै "शिष्य" नाम कहौ; पूछी नाम लियो है। दई मँगवाय वस्तु राखियो

दुराव बात आय दास भयौ कही रीझि पद दियौ है ॥
॥ ४१९ ॥ (६२९–४१९ = २१०)

वार्तिक तिलक।

श्री "नरवाहन" जी श्री हरिवंशजी के शिष्य, परम संत सेवी, "भौ गाँव" में रहते थे। व्रज के एक ज़मींदार थे और लुटेरे भी। कोई सेठ लक्षावधिकी संपदा नाव में भरे गंगाजी में चला आता था, आपने संतसेवा के लिये सब लूटलिया, और उस सेठको कारागार (बन्दी घर) में डाल दिया। उस बणिक (सेठ) को भोजन देने एक लौंड़ी (टहलनी) कारागार में जाती थी; देखकर उस दासी के हृदय में बड़ी दया आई, तब बहुत अकुला के उसको एक उपाय बताया कि "तुम बड़े ऊंचे स्वरसे, राधावल्लभ श्री हरिवंश !' इस प्रकार से नाम जपो; जब पूछा जाय तब कहना कि "मैं श्री हरिवंशजी का शिष्य हूं"। उसने ऐसा ही किया।

श्री नरबाहनजी ने पूछा कि "तुम यह नाम क्यों जपते हो ?" उसने कहा "मैं श्री हरिवंशजीका शिष्य हूं।" राजा नरबाहन बड़ेही गुरुनिष्ठ थे। सुनतेही धन देकर कहा कि "श्री गुसाईंजीसे यह बात मत कहना।" वह वैश्य घर में आ, शीघ्रही श्री वृन्दावन जाकर श्रीहित हरिवंशजी का शिष्य हो गया, और अपना वृत्तांत भी कहा कि "नरवाहनजी ने लाखों का धन लेकर मुझे बन्दी में डाल

दिया था, सो मैंने आपका नाम लिया और झूठही कहा कि "आपका शिष्य हूं," तब धन देकर मुझे घर भेज दिया।" सुनकर प्रसन्न हो श्रीगुसाईंजी ने दोनों को प्रभुपद प्रेमदिया॥ श्रीनरवाहन जी की जय।

आप की गुरुभक्ति पर रीझकर इन्हीं की छाप देकर दो पद बनाकर अपनी "चौरासी" (ग्रंथ) में रख दिया॥

---

(५२५) मूल। छप्पय। (८४२ – ५२५ = ३१७)

श्री मुख पूजा संत की, आपुन तें अधिकी कही॥ यहै वचन परमान "दास गांवरी" "जटियाने" भाऊ। "बूंदी" "बनियां राम" "मंडौते" "मोहनवारी" "दाऊ"॥ "माडौठी" "जगदीसदास," "लक्ष्मन" "चटुथावल" भारी। "सुन पथ" में "भगवान;" सबै "सलखान" "गुपाल" उधारी॥ "जोबनेर" "गोपाल" के भक्त इष्टता निर्वही॥ श्री मुख पूजा संत की आपुन तें अधिकी कही॥१०६॥ (२१३–१०६ = १०७)

वार्तिक तिलक।

भगवान ने अपने श्री मुख से अपनी पूजा से अपने "भक्त संतों की पूजा अधिक" कही है। इसी श्री मुख वचन का प्रमाण मानकर इस छप्पय के कहे हुए भक्तों ने

प्रभु से अधिक प्रभु के भक्तों को इष्टदेव मान पूजा सेवा की "जटियाने," में "श्री गांवरीदास" जी को इसी वचन के प्रमाण संतों में भाव था। "बूंदी" में भी "बनियां राम" जी को भी यही भाव था। "मंडौते" में "मोहनबारीजी" "दाऊ" जी के भी संत इष्टता का ही भाव था। "माडौठी" में "जगदीशदास" जी; "चटथावल" में भी "लक्ष्मन भगत" जी भारी संत सेवी थे; "सुनपथ" में भगवान भगत" जी; सम्पूर्ण "सलखान" नगर को "गुपालभक्त जी" ने उद्धार किया; "जोबनेर" में "गोपाल" जी की भक्तों में इष्टता का निर्वाह हुआ॥ (श्लोक) आदिस्तु परिचर्यायां, सर्वांगै रपि वन्दनम्॥ मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्व भूतेषु मन्मतिः १ नैवेद्यं पुरतो मह्यं चक्षुषा गृह्यते मया। रसं वैष्णव जिह्वाग्रे गृह्णामि कमलोद्भव॥"

१ श्री गामरी(गांवरी)दास जी
२ श्री बनिया राम जी
३ श्री मोहन बारी जी
४ श्री दाऊ राम जी
५ श्री जगदीशदास जी
६ श्री लक्ष्मण भगत जी
७ श्री भगवान भगत जी
८ श्रीगोपाल भक्तजी(सल०)
९ श्रीगोपालजी जोबनेर के।

श्रीगोपालभक्त जी।

(५२९) टीका। कवित्त (८४२—५२६ = ३१६)

"जोबनेर" बास सो "गोपाल" भक्त-इष्ट ताकों

किये निर्वाह, बात मोंको लागी प्यारियै। भयौ हो विरक्त कोऊ कुल में, प्रसंग सुन्यौ, आयौ यौं परीक्षा लेन, द्वार पै विचारियै॥ आय पर्यो पांय, "पांय धारौ निज मंदिर मैं;" "सुंदरि न देखौं मुख, पन कैसे टारियै?" "चलौ, जिन टारौ, तिय रहैंगी किनारौ, करि, चले, सब छिपी, नैकु देखी, पाकै मारियै॥ ४२०॥ (६२९–४२० = २०९)

वार्तिक तिलक।

जयपुर प्रदेश के "जोबनेर" * नामक एक पुर के वासी श्री "गोपाल" जी ने भक्त-इष्टता का निर्वाह भलीभांति से किया, सो वार्ता सुनकर मुझे अति प्यारी लगी। आपके कुलका कोई जन विरक्त वैष्णव होगया था, वे आपके 'हरि-भक्त को इष्टमान सेवा करने' का प्रसंग कहीं सुन, परीक्षा लेनेके लिये द्वार पर आये। श्रीगोपालजी ने देखके चरणों में प्रणाम कर कहा कि "आप अपने घर में पधारिये"। वे बोले कि "मेरा पण है कि स्त्री का मुख न देखूं, सो उस प्रतिज्ञा को छोड़ तुह्मारे घर के भीतर कैसे जाऊं?" आपने कहा "चलिये,

* एक गोपाल जी काशी के निकट बाबुली ग्राम के; और एक गोपाल भट्ट श्री वृन्दावन के श्रीहरिवंश जी के ठाकुर के सेवक; एक गोपाल जी श्रीपैहारीकृष्णदास जी के शिष्यों में; एक गोपाल जी कवि ब्रज के; एक गोपाल जी हरिव्यास देव की दूसरी शाखा में भगवानदासजी के शिष्य; एक गोपाल जी कवि बांसवाड़े के; एक कवि ईंटोरा के; एक जटाधारी; एक नरोड़ाके; एक गोपालजी "वल्लभाख्यान" के कर्ता; एक कायस्थ सिंहनद के; एक बड़नगर के; और एक गुजरात के॥ इतने श्री "गोपाल" जी प्रसिद्ध हैं।

अपना पण मत छोड़िये, स्त्रियां एक ओर रहैंगी, आप के सामने नहीं आवेंगी "। तब वे गृह में गये, आपने स्त्रियों को छिपा दिया, परंतु एक स्त्री थोड़ा झांकने लगी, इनने देखकर श्रीगोपालजी के गाल पर एक तमाचा जड़ही तो दिया॥

(५२७) टीका । कवित्त (८४२–५२७ = ३१५)

एक पै तमाचो दियौ, दूसरे ने रोस कियौ, " देवौ या कपोल पै " यों वानी कही प्यारी है । सुनि, आंसू भरि आये, जाय लपटाये पाय, कैसे कही जाय यह रीति कछु न्यारी है ॥ " भक्त-इष्ट " सुन्यौ, मेरे बड़ौ अचिरज भयौ, लई मैं परीक्षा, भई सिक्षा मोको भारी है । बोल्यौ अकुलाय, "अजू पैयै कहा भाय, ऐपै साधु सुख पाय कहैं, यही मेरी ज्यारी है" ॥ ४२१ ॥ (६२९–४२१ = २०८)

वार्त्तिक तिलक ।

थप्पड़ के लगतेही एक दूसरे ने तो क्रोध किया, पर श्री गोपाल जी हाथ जोड़ सन्त से बोले " हे इष्ट देव ! आपने एक कपोल को तो कृपाकर तमाचा दिया परंतु यह दूसरा कपोल आपके कर कमल के स्पर्श से बिहीन अपना अपमान मानेगा, कृपाकर थपेड़ा इस कपोल को भी दीजिये "। क्षमाशील भक्त जी ने ऐसी प्यारी बानी कही, सुनतेही उन परीक्षा-कारी सन्त के नेत्रों में आंसू भर आये, और उठ कर चरणों में लपट के बोले कि " यह आपके लोकोत्तर रीति की कैसे प्रसंशा करूं, मैंने सुना कि ' आप हरि भक्तों को इष्टदेव मानते हैं ' सो मेरे बड़ाही आश्चर्य हुआ

इसलिये मैंने परीक्षा ली। उसमें मुझे यह बड़ी भारी शिक्षा हुई कि भगवद्भक्तों को इस प्रकार मानना चाहिये और उनको ऐसा सहना चाहिये, और निष्ठायुक्त पुरुषों की परीक्षा न लेनी चाहिये।

सुनतेही श्रीगोपाल जी अकुला के बोले "अजी महाराज ! मैं भाव को कहां पा सकता हूं, परंतु संतजन कृपाकर मुझे अपना "दास" कहते हैं, यही मेरा जीवन (ज्यारि) है"।

(५२८) मूल। छप्पय (८४२-५२८=३१४)

परमहंस वंसनि मैं, भयौ विभागी बानरौ* ॥ "मुरधरखंड" निवास भूप सब आज्ञाकारी। राम नाम विश्वास भक्त पदरज व्रतधारी ॥ जगन्नाथ के द्वार दँडौतानि प्रभु पै धायौ। दई दासकी दादि, हुंडी करि फेरि पठायौ ॥ सुरधुनी ओघ संसर्ग तें नाम बदल कुच्छित नरौ। परमहंस वंसनि मै भयौ विभागी बानरौ * ॥ १०७ ॥ (२१३-१०७=१०६)

"दादि" = दाद् داد = न्याय; दया।

श्रीलाखा जी

वार्त्तिक तिलक।

श्रीलाखा जी "बानर-वंश" में उत्पन्न होकर भी, पर-

महंत वंशों के सुख, सुजस, भजन, तथा सुकृत के भागी (हिस्सादार) हुए ।

"मुरधरखंड" (मारवाड़) में आपका निवास था; आपके भजन और संत-सेवा के प्रताप से सब राजा आज्ञाकारी थे; महामंत्र श्रीराम नाम में आपको दृढ़ विश्वास था और भगवतभक्तों के पदपंकज-रजके व्रतधारी थे । श्रीजगन्नाथ प्रभुके द्वार पर दरशन के हेतु साष्टांग दंडवत करते हुए अपने गृह से पधारे। श्रीजगन्नाथ जी ने अपने दास पर दया कर, जो अवश्य करने योग्य कार्य्य था उसको करने के लिये हुंडी करा के फिर घरको भेजा। जैसे 'सुरधुनी ओघ' जो श्रीगंगा जीकी धारा उस में मिलने से कुत्सित मलीन नालाओं का भी नाम रूप पलट कर श्री "गंगा" ही का नाम रूप हो जाता है, इसी प्रकार, वानर वंश डोम जाति से भगवत भागवत में मिलकर आप भी तद्रूप हो गये ॥ (दो०) "तुलसी नारो जगत को, मिलै संग में गंग । महा नीचपन आदिको, शुद्ध करै सतसंग ॥ १ ॥ (श्लोक) यस्माद्यस्मादपिस्थानाद्गंगा, यामम्भ आपतत् ॥ सर्वभवति गाङ्गेयं को न सेवेतबुद्धिमान् ॥ १ ॥"

* छप्पै १०७ का तिलक देखिये । कवित्त १२ का तिलक पृष्ठ ५३ देखिये छापेके भूलसे १०७ वें छप्पै को १११ वां छप गया है ।

(५२९) टीका । कवित्त (८४२-५२९ = ३१३)

"लाखा" नाम भक्त, वाकौ "वानरौ *" बखान

किये, कहै जग डोम* जासों मेरो सिरमौर है। करै साधु सेवा बहु पाक डारि मेवा, संत जेंवत अनंत सुख पावै कौर कौर है॥ ऐसे में अकाल पर्यो, आवैं धरि माल ज्वाल, कैसे प्रतिपाल करै, ताकी और ठौर है। प्रभुजू स्वपन दियौ "कियौ मैं जतन एक गाड़ी भरि गेहूं भाँति आवै करौ गौर है" ॥ ४२२ ॥ (६२९—४२२ = २०७)

"गौर" = ग़ौर ,,° = विचार।

श्री नाभास्वामी जी ने जिसको "वानर" कहके वर्णन किया, उन भक्त जी का "लाखा" नाम था, जगके लोग आपको "डोम*" "हनुमानवंशी" कहते थे। श्रीप्रिया दास जी कहते हैं कि भक्ति भूषित होने से मेरे तो सिर-मौर हैं। आप बड़ी प्रीति से साधु-सेवा करते थे अनेक मेवे डाल के पकवान मिठाई बनवाकर भोजन कराते थे; जिन पदार्थों को पाने में ग्रास ग्रास में संतों को अनंत सुख होता था।

"* कहै जगडोम"। पश्चिम वृन्दावन मारवाड़ आदि देशों की बोली बानी को न जाननेवाले "डोम" जाति से इस प्रान्तका डोम सूप बेचने वाला बँसफोड़ वा भंगी (हलाल खोर) जानते हैं, सो उनकी बड़ी भूल है; क्योंकि उस देश में "डोम" "भाट," "चारण," इनकी जाति और वृत्ति एक समान "कथक" की सी होती है सोई डोम लाखा जी थे (इधर के डोम नहीं); डोमही को "वानर वंशी" भी कहते हैं। इसी से मुनशी तुलसी राम, श्री तपस्वीरामजी, भक्त कल्पद्रुम कारे, और ज्वालाप्रसाद्जी ने लाखा जी को श्रीहनुमानवंशी लिखा है। बहुत महात्मा श्री नाभास्वामीको भी इसी जाति में जन्म कहते हैं। विदित हो कि उधर का 'डोमवंश,' इधर का डोम नहीं॥

ऐसी सेवा करते समय में बड़ा अकाल पड़ गया, तब तो बहुत से लोग तिलक माला वैष्णव वेष धर आपके यहां आने लगे। अब सबोंका कैसे प्रतिपाल कर सकैं, विचार किया कि "इस घर को छोड़ कहीं चले जावैं"। उसी रात्री में श्री भक्तवत्सल रामजी ने स्वप्न दिया कि "तुम कहीं जाओ मत; हमने एक यत्न किया है, एक गाड़ीभर गेहूं और एक दूध देती भैंसि तुम्हारे यहां आवैगी, उसी से संतोंकी तथा और जीवों की सेवा सहायता करो"।

(५१०) टीका। कवित्त। (८४२–५१० = ३१२)

"गेहूं कोठी डारि मुँह मूंदि नीचे देवो खोलि, निकसै अतोल पीसि रोटी लै बनाइयै। दूध जितौ होय सो जमायकै विलोय लीजै, दीजै यों चुपरि संग छांछि दै जिंवाइयै"॥ खुलिगई आंखैं, भाखैं तिया सों जु आज्ञा दई, भई मन भाई, अजू हरि गुन गाइयै॥ भोर भयें गाड़ी भैंसि आई, वही रीति करी, करी साधु सेवा नाना भांतिन रिझाइयै॥ ४२३॥
(६२९—४२३ = २०६)

वार्तिक तिलक।

"उस गेंहूको कोठी में भर उसका मुंह मूंददेना नीचे से छेद कर निकालना, उसमें अप्रमाण गेंहू निकलेगा, उसको पीस पीस कर रोटी बनवाना, दूधको जमाके मथके घी निकाल, रोटी में चुपड़ देना, और छाछके साथ रोटी खिलाया करना"। इतना सुनते ही जाग उठे, नेत्र खुल गये, अपनी धर्मपत्नी से

सर्कारकी कृपा आज्ञा सुनाकर कहने लगे कि "प्रभुने मेरे मनका भाया किया, अब उनके गुण गाय गाय संतों की सेवा करूंगा।

प्रभात होते ही गाड़ीभर गेंहू और भैंसि आई; जैसी प्रभुकी आज्ञा थी उसी रीति से साधुओं की सेवा कर बहुत प्रकार से रिझाने लगे॥

(५११) टीका। कवित्त (८४२-५११ = ३३१)

आई कौन रीति, वाकी प्रीतिहू बखान कीजै, लीजै उर धारि सार भक्ति निरधार है। रहै ढिग गांव, तहां सभा एक ठौंव भई, टूटि गयो भाई सो उगाही को विचार है॥ बोलि उठ्यौ कोऊ "यों व्यौहार को तौ भार चुक्यौ, लीजियै संभारि "लाखा" संत भव पार है"। लाज दबि तिन दिए गेंहू लै पचास मन, दई निज भैंसि संग सब सरदार है॥४२४॥ (६२९-४२४ = २०५)

वार्त्तिक तिलक।

वह भैंसि और गेंहू गाड़ी किस रीति से आई और आप की संत सेवा की प्रीति देख किस प्रकार प्रीतिपूर्वक भेजा सो सुनिये। इस जगत में भक्ति ही सार है सो निश्चै कर यह बात हृदय में रख लीजै।

जिस गांव में लाखा जी थे उसी के समीप के एक गांव में सब लोगों ने इकट्ठे हो सभा की कि उन लोगों का एक भाई निर्धन हो गया उसको सम्पन्न करने के लिये

सब से धन उगाहैं यह विचार ठीक किया गया।

प्रभु प्रेरित उनमें से एक बोला कि "व्यवहार का भार तो चुक गया, परंतु परमार्थ में श्रीलाखाजी संतको भी सँभार करना चाहिये जिससे भवसागर के पार उतर जाना है।" इसके वचन सुन लाज से दबके सबों ने पचास मन ५०ऽ गेंहू दिया और सबों में जो श्रेष्ठ था उसने अपनी भैंसि दी। इस रीति से गेंहू की गाड़ी और भैंसि आई॥

(५१२) टीका। कवित्त (८४२-५१२ = ३३०)

मारवार देस तें चल्यौ ई साष्टंग किये, हिए "जगन्नाथ देव याही पन जाइयै।" नेह भरि भारी, देह वारि फेरि डारी, कैसें करै तनधारी, नेकु श्रम मुरझाइयै॥ पहुंच्यौ' निकट जाय, पालकी पठाइ दई, कहैं "लाखा भक्त कौन?' बेगि दै बताइये।" काहू कहि दियौ; जाय कर गहि लियौ, "अजू चलौ! प्रभु पास, इहि छिन ही बुलाइयै"॥४२५॥ (६२९-४२५ = २०४)

वार्तिक तिलक

श्रीलाखा भगत जी मारवाड़ देश में जहां रहते थे वहां ही से साष्टांग प्रणाम करते श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन को चले। हृदय में यह निश्चय प्रतिज्ञा की कि "साष्टांग करते ही श्रीजगन्नाथ देव जी के समीप तक जाऊंगा।" सो इसी प्रकार से गये। बड़े भारी प्रेम से भरे हुए प्रभु के ऊपर देह को न्यौछा कर दिया, भला देखिये किसी तन-

धारी से ऐसा परिश्रम कैसे हो सकता है, थोड़े ही परिश्रम करने में लोग मुरझा जाते हैं। आप दंडवत करते ही जा पहुंचे।

श्रीजगन्नाथ जी ने अपने पंडों पार्षदों के साथ अपनी पालकी भेज दी। वे सब मार्ग में पूछते चले आते हैं कि "लाखा भक्त कौन है?" किसी आपके संगी ने बता दिया। पंडे लोग जाकर हाथ पकड़ बोले "अजी भक्त जी! इस पालकी पर चढ़के चलिये। प्रभु ने इसी क्षण बुलाया है"।

(५३३) टीका। कवित्त (८४२-५३३=३०९)

"कैसे चढ़ौं पालकी मैं? पन प्रतिपाल कीजै, दीजै मोकों दान, यही भांति जा निहारियै।" बोले "प्रभु कही 'भाय सुमरनी बनाय ल्याये, अब पहिराय मोहि" सुनि उर धारियै॥ चढ़े, "चढ़ि बढ़ि कियौ चाहैं, यह जानी मैं तौं, पढ़ि पढ़ि पोथी प्रेम मापै बिस्तारियै"। जाय कै निहारे, तन मन प्रान वारे, जगन्नाथ जू के प्यारे नेकु ढिग तें न टारियै॥ ४२६॥ (६२९-४२६=२०३)

वार्तिक तिलक।

आप हाथ जोड़ के बोले "मैं पालकी पर किस प्रकार चढ़ूं? प्रथम ही संकल्प कर चुका हूं कि 'साष्टांग ही से जाकर प्रभु के दर्शन करूंगा,' उस प्रतिज्ञा को मैं पालन किया चाहता हूं, आप लोग भी मुझे यही वरदान दीजे

कि इसी प्रकार जाकर दरसन करूँ।" पंडे ने उत्तर दिया कि प्रभु की आज्ञा है, चढ़िये, और यह भी आज्ञा हुई है कि 'जो सुमरनी बनाकर लाये हैं, सो हमको बहुत प्रिय है, शीघ्र आकर पहिरावें।"

ऐसा वचन सुन श्रीलाखा जी ने निश्चै प्रभु की आज्ञा जानी, क्योंकि सुमिरनी की बात पते की थी। प्रभु का अनुशासन मान चढ़ के चले; और भक्त जी यह कहने लगे कि "मैंने जान लिया कि मुझसे लघु जीव को सर्कार अपने आश्रितों में चढ़बढ़ के किया चाहते हैं; आप प्रेम की पोथी पढ़पढ़ मेरे ऊपर कृपा विस्तार किया चाहते हैं।"

भगत जी ने, जा प्रणाम कर नेत्रों से दरसन पाय, प्रभु के ऊपर तन मन प्राण सब न्योछावर कर दिये आप श्रीजगन्नाथजी को अत्यंत प्यारे थे इससे प्रभु अपने निकट से प्रथक नहीं होने देते थे॥

(५३४) टीका। कवित्त (८४२–५३४=३०८)

बेटी एक क्वाँरी ब्याहि देत न बिचारी मन धन हरि साधुनि कौ, कैसे कै लगाइयै। "कीजै वाकौ काज" कही जगन्नाथ देवजूने "लीजे मोपै द्रव्य" उर नेंकहूं न आइये॥ बिदा पै न भए चले दृग भरि लये, गये आगे नृप भक्त मग चौकी अटकाइयै। दियौ है सुपन प्रभु जिनि हठ करौ अजू हुंडी लिख दई लई बिनै कै जताइयै॥ ४२७॥ (६२९–४२७=२०२)

वार्तिक तिलक।

श्रीलाखा भक्त जी की एक बेटी घर में कुँवारि (कुमारी) थी, इस बिचार से उसका बिवाह नहीं करते थे कि "मेरे पास जो धन है, सो श्रीहरि और संतों का है, इस में से उसमें कैसे लगाऊं ?"

श्रीजगन्नाथ जी ने स्वयं आज्ञा दी कि "हमसे द्रव्य लेकर उसका बिवाह अवश्य कर दो"। सुनकर आप के मन में यह बात नहीं आई; कुछ दिन रहकर फिर गृह को चले, परंतु द्रव्य लेने के भय से प्रभु के समीप बिदा होने नहीं गये। प्रभु के बियोग से नेत्रों में जल भर, चले आये। श्रीजगन्नाथ जी ने एक भक्त राजा को स्वप्न दिया उसने मार्ग में चौकी बैठा दी; जब आये तब लोग राजा के पास ले गये राजा ने सत्कार कर बिनय प्रार्थना की कि मुझे स्वप्न में प्रभु ने आज्ञा दी है सो आप हठ मत कीजिये कन्या के बिवाह के लिये द्रव्य लीजिये तब आपने लिया, राजा ने हुंडी लिख दी॥

(५३५) टीका। कवित्त (८४२-५३५=३०७)

हुंडी सो हजार की, यों लैके गृह द्वार आये, तामें तें लगायौ सौक बेटी ब्याह कियौ है। और सब संतनि बुलाय कै खवाय दिये, लिये पम दास सुख रासि पन लियौ है॥ ऐसें ही बहुत दाम वाही के निमित्त लैलै संत भुगताये अति हरषित हियो है। चरित अपार कछु मति अनुसार कह्यौ

लह्यौ जिन स्वाद सो तौ पाय निधि जियौ है ॥ ४२७ ॥
(६२९–४२८ = २०१)

वार्तिक तिलक।

दशसौ (एक सहस्र) रुपये की हुंडी लेकर गृह में आ, इनने केवल एक सौ रुपे लगाके तो अपनी कन्या का बिवाह कर दिया, और शेष सब द्रव्य संतों को बुलाकर दिव्य पदार्थ भोजन करादिये, सब संतों के चरण ग्रहण कर सुखी हुए।

इसी प्रकार प्रथम भी कन्या के बिवाह के निमित्त भक्त लोगों ने बहुत द्रव्य दिये थे; परंतु वह सब भी साधुओं को खिलाकर आप आनंदित हुए थे।

श्रीलाखा भक्त जी के ऐसे ऐसे अपार चरित्र हैं; मैं ने अपनी मति के अनुसार कुछ वर्णन किये; जिन्होंने साधु चरित्र के रस का स्वाद पाया, वे भक्त यह श्रीलाखा जी की कथा सुन मानों निधि पाके जिये हैं ॥

(५३६) मूल। छप्पय (८४२–५३६ = ३०६)

जगत विदित "नरसी" भगत, (जिन) "गुज्जर"- धर पावन करी ॥ महास्मारत लोग भक्ति लौलेस न जानैं। माला मुद्रा देखि तासु की निन्दा ठानैं ॥ ऐसे कुल उत्पन्न भयौ, भागौत सिरोमनि। ऊसर तें सर कियौ, खंड दोषहिं

खोयो जिनि॥ बहुत ठौर परचौ दियौ, रस रीति भक्ति हिरदै धरी। जगत विदित "नरसी" भगत, (जिन) "गुज्जर"-धर पावन करी॥ १०८॥
(२१३-१०८=१०५)

वार्तिक तिलक।

श्रीनरसी मेहताजी।

कलि अब्द	सम्बत	इसवी सन	शाके
४६४४	१६००	१५४३	१४६५
४६९४	१६५०	१५९३	१५१५

दो०। हृदय राखि मेहता-चरित, भजु श्रीसीताराम।
'तपसी' मिलिहै भक्ति मणि, पूजिहिं सब मनकाम॥

जगत में विख्यात श्रीनरसी भगत जी हुए, जिनने गुजरात देश की भूमिको और उस प्रदेश के वासियों को पावन किया; वहां के लोग बड़े ही स्मार्त्त, कर्मकाण्ड में आशक्त, और अज्ञानी थे। श्रीहरिभक्ति को लवलेश मात्र भी नहीं जानते; जो किसी को तुलसी की कंठी माला, वैष्णवीय तिलक (ऊर्द्ध पुण्ड्र), शंख चक्रादि मुद्रा धारण किये देखैं, उसकी बड़ी ही निन्दा करते थे। ऐसे कुल में उत्पन्न होकर, आप भागवत शिरोमणि हुए। वह देश ऊसर भूमि के समान भक्तिजलहीन अशुद्धतायुक्त था, उस गुर्जरखंड को भगवत धर्म जल युक्त प्रेम पंकज विकसित सरोवर समान कर के दोषों को जिनने नाश किया

और बहुत ठिकाने पर परीक्षा परचौ दिये (सो टीका में वरणन होंगे); ऐसे रस रीति भक्ति हृदय में धारण करनेवाले श्रीनरसी जी हुए॥ (उनको पुनः पुनः दण्डवत)।

शृङ्गार माधुर्य्य निष्ठा में आप गोपिकाओं के तुल्य हुए।

(५३७) टीका। कवित्त (८४२–५३७ = ३०५)

"जूनागढ़" वास, पिता माता तन नास भयौ, रहै एक भाई औ भौजाई रिसभरी है। डोलत फिरत आय, बोलत "पिवावौ नीर," भाभी पै न जानी पीर, बोली जरीवरी है॥ "आवत कमाए, जल प्याये बिन सरै कैसे? पियौ," यों जवाब दियौ देह थरथरी है। निकसे बिचारि "कहूं दीजे तन डारि," मानौ शिव पै पुकार करी; रहे चित धरी है॥ ४२९॥ (६२९–४२९ = २००)

"जवाब" = جواب = उत्तर॥

वार्तिक तिलक।

भक्त शिरोमणि श्रीनरसी मेहता जी का गुजरात प्रदेश के "जूनागढ़" में निवास था। आप नागर ब्राह्मण थे; माता पिता दोनों के तन छूट गये; घर में एक शाक्त भाई और क्रोध करनेवाली एक भावज (भौजाई) थी। एक दिन आप डोलते फिरते किसी ओर से आए और बोले कि "भाभी! पानी पिला दीजिये"। सुन के उसने प्यास की पीर तो नहीं जानी, पर जरबर के बोली कि "बड़ी कमाई करके तो आते हो! बिना जल पिलाये कैसे काम चलेगा?

पी न लो, पीते क्यों नहीं हो।" उसका ऐसा उत्तर सुन, अपमान से आपका शरीर कांपने लगा।

घर से निकल विचार किया कि "कहीं शरीर को तजदूं।" नगर के बाहर एक शिवालय था उसमें जाके मानों आपने अपना दुःख शिवजी से पुकार के सुनाया। वह अपमान और शिवमहिमा चित्तमें धरेहुए आप वहीं पड़ेरहे॥

(दोहा) "नरसी हो अति सरस हिय, कहा देउँ समतूल। कहेउ सरस शृङ्गाररस, जानि सुखनि कौ मूल॥ दीनी ताकों रीझिकै, माला नन्दकुमार। राखि लियो अपनी शरण, बिमुखनि मुख दै छार॥ जहँ जहँ भक्तन को कछु, संकट परतहि आनि। तहँ तहँ आपन बीचि है, धरत अभय को पानि॥" (श्री ध्रुवदासजी)

(५३८) टीका। कवित्त (८४२—२३८ = ३०४)

बीते दिन सात, शिवधामतें न जात बार, "परै काहू तुच्छ द्वार, सोई सुधि लेतहै"। इतनी विचारि, भूख प्यास दई टारि, लियौ प्रगट सरूप धारि, भयौ हिय हेत है॥ बोले "वर मांग," "अजूमांगिबौ न जानत हौं; तुम्हैं जोई प्यारौ सोई देवो, चित चेत है"। पर्यो सोच भारी, "मेरी प्रान प्यारी नारी, तासौं कहत डरत, वेद कहै 'नेति नेत' है"॥ ४३०॥ (६२९—४३० = १९९)

वार्तिक तिलक।

आप इस सूने शिवमन्दिर में बिनाअन्नजल सात

दिवस पड़े रहे, मन्दिर के बाहर नहीं गये; श्रीशिवजी ने विचार किया कि "कोई यदि किसी असमर्थ तुच्छ के द्वार पर भी पड़ा रहता है तो वह सुधि लेता है, और मैं तो महेश्वर हूं"। इससे श्रीनरसी जी की भूख प्यास पहिले नाश कर फिर कृपापूर्वक स्वरूप धारण कर प्रगट हो, बोले कि "वर मांग"।

नरसीजी ने कहा "अजी महाराज! मैं मांगना नहीं जानता, जो आपको प्यारा हो सो दे दीजिये; वही, वही मुझको अच्छा लगता है"। श्रीशिव जी सोच विचार करने लगे कि जो मेरा प्रियतत्त्व है सो मैं अपनी प्राणप्रिया पारवती से भी कहते डरता हूं, उसको वेद भी "नेति नेति" कहते हैं।

(५३९) टीका। कवित्त (८४२–५३९ = ३०३)

"दियौ मैं वृकासुर को वर, डर भयौ तहां, वैसे डर कोटि कोटि यापै वारि डारे हैं। बालक न होय यह पालक है लोकनि कौ, मन कौ विचार कहा दीजे प्रानप्यारे हैं॥ जोपै नहीं देत मेरौ बोलिवो अचेत होत;" दियौ निज हेत तन आलिन के धारे हैं। ल्याये वृन्दावन रास मंडल, जटित मनि, प्रिया अनगन बीच, लालजू निहारे हैं॥ ४३१॥
(६२९–४३१ = १९८)

वार्त्तिक तिलक।

"एकबार मैंने वृकासुर को वर दिया, उसमें मुझे पीछे

भारी डर का सामना होगया, पर वैसे डर इसपर कोटिन न्योछावर हैं; क्योंकि यह बालक नहीं है, बरन लोकों का पालक और निस्तारक है"। मनमें और विचार किया कि "प्रभु (हरि) मुझको प्रिय हैं उन्हीं को दूं; जो नहीं देता तो मेरा वचन वृथा होता है"।

इससे श्रीशंकर ने अपनी इच्छा से श्रीनरसी जी को सखी तन दिया और आप भी वैसेही स्वरूप बनाकर अति कृपा से श्री नित्य बृन्दाबन रास मंडल का इनको दरसन कराया, जहां मणिन जटित भूमि में अगणित अनेक प्रियायों के मध्य लालजी के दरशन हुए॥

(५४०) टीका। कवित्त (८४२–५४० = ३०२)

हीरानि खचित रासमंडल, नचत दोऊ रचित अपार नृत्य गान तान न्यारियै। रूप उजियारी, चंद चांदनी न सम, तारी देत करतारी, लाल गति लेत प्यारियै॥ ग्रीव की ढुरनि, कर आंगुरी मुरनि, मुख मधुर सुरनि, सुनि श्रवन तपारियै। बजत मृदंग मुहचंग संग, अंग अंग उठति तरंग रंग छबि जीकी ज्यारियै॥ ४३२॥ (.६२९—४३२ = १९७)

वार्तिक तिलक।

सोने से रचित हीराओंसे जटित रासमंडलमें दोनोंप्रिया-प्रियतम नाच रहे हैं; लोक से न्यारी नाच, और गान हो रहा है; श्रीश्यामाश्याम के रूपकी अनूप उजियाली फैली है; चन्द्र और चांदिनी की समता कहां? लालजी तारी दे२कर प्यारी२

गति लेते हैं; ग्रीवा की ढुरनि, तथा हाथों की उंगलियों की मुरनि देख, मुखका मधुर स्वर सुन, आँखों कानोंकी ताप नाश हो जाती है; मृदंग बजरहा है, उसीके संग २ मुँहचंग भी बजता है, और अंग अंग में जीव की भी जीवनी सी छबि के तरंग उठरहे हैं ॥

(५४१) टीका । कवित्त (८४२ – ५४१ = ३०१)

दई लै मसाल हाथ, निरखि निहाल भई; लाल डीठि परी कोऊ नई यह आई है । शिव सहचरी रँगभरी अटकरी, बात मृदु मुसिकात नैन कोर मैं जताई है ॥ चाहै याहि टारौ यह चाहै प्रान वारौ, तब श्याम ढिग आय कही नीके समुझाई है । "जावौ यहै ध्यान करौ; करौ सुधि, आऊं जहां;" आए निज ठौर, चटपटीसी लगाई है ॥ ४३३ ॥ (६२९—४३३ = १९६)

"मसाल" = مشعل = मश्अल् = बड़ादीप ।

वार्त्तिक तिलक ।

करुणायतन श्रीशिवजी ने नरसी सखी के हाथ में दीपक दिया; नरसी सखीजी श्रीलालजी को देखकर निहाल होगई; लालजी कीभी दृष्टि इनके ऊपर पड़ी, जाना कि यह कोई नवीन सखी आई है । फिर अनुमान से जाना कि यह रंगभरी शिवजी की सहचरी है । शिवजी ने भी मन्दमुसकाके नैनोंकी कोर से जनाया कि "इसको अंगीकार कीजिये" अंगीकार कराके शिवजी इसको वहांसे टारके लिवा लाना चाहते थे, पर यह प्राण न्यौछावर किया चाहती थीं ।

तब समीप आकर श्यामसुन्दरजी ने भली भांति समझाया कि "जाओ यहीं हमारा ध्यान किया करो, और जहां स्मरण करके बुलावोगे मैं उसी समय वहीं दरशन दूंगा।" आज्ञा मान अपने ग्राम में तो आये, परन्तु उस दरशन के वियोग की चटपटीसी मन में लग गई।

(५४२) टीका। कवित्त (८४२–५४२ = ३००)

कीनी ठौर न्यारी, विप्र सुता भई नारी, एक सुत उभै वारी, जग भक्ति विस्तारी है। आवैं बहु संत, सुख देत हैं अनंत, गुन गावत रिझावत औ सेवा विधि धारी है॥ जिती द्विज जात दुख भयौ अति गात, मान्यौ बड़ौ उतपात, दोष करै न बिचारी है। एतौ रूप सागर मै नागर मगन महा, सकै कहा करि चहूं ओर गिरिधारी है॥ ४३४॥ (६२९–४३४ = १९५)

वार्तिक तिलक।

श्रीनरसी जी अपने भाई से न्यारा एक स्थान बना कर रहने लगे। हरि इच्छा से एक ब्राह्मण की कन्या से बिबाह हुआ, उस पत्नी से दो कन्या और एक पुत्र उत्पन्न हुए।

जगत में आपने हरिभक्ति का बड़ाही बिस्तार किया। आप के गृह में बहुत से संत आते थे, उनको अनेक प्रकार से परस्पर सुख दिया लिया करते थे। सदा प्रभु के गुण गान करते रिझाते, और भगवत-भागवत-सेवा बिधि बिधान से किया करते थे।

आपका यह आचरण देख, जितने अभक्त ब्राह्मण थे वे बड़ा उत्पात मान दुखी होकर आप से बड़ा द्वेष करने लगे क्योंकि वे सब अविचारी तो थे ही। और श्रीनरसी जी तो प्रेम पथ में प्रवीण श्रीश्यामसुन्दर जी के रूपसागर में मग्न रहते थे; दुष्ट लोग क्या कर सकते हैं? आपके तो चारों ओर श्रीगिरिधारी रक्षक हैं, आप सर्वत्र श्रीगिरिधारी ही को देखते थे॥

(५४३) टीका। कवित्त (८४२-५४३ = २९९)

तीरथ करत साधु आये पुर, पूछै "कोऊ हुंडी लिखि देय हमै? द्वारिका सिधारिबे"। जे वे रहे दूषि, कही जात ही भगावै भूषि, नरसी बिदित साह आगे दाम डारिबे॥ चरण पकरि गिरि जावौ जौ लिखावौ अहो कहौ बार बार सुनि बिनती न टारिबे। दियौ लै बताय घर; जाय वही रीति करी; भरी अँकवार "मेरे भाग, कहा वारिबे?"॥ ॥ ४३५ ॥ (६२९-४३५ = १९४)

वार्त्तिक तिलक।

एक समय तीर्थ करते कई संत जन जूनागढ़ में आकर पूछने लगे कि "हमको द्वारिका जाना है, कोई वहां को हुंडी कर देनेवाला है?" यह बात, जो खल आपकी निन्दा और विरोध करनेवाले थे उनने सुनकर कहा कि "यहां बड़े विख्यात सेठ नरसी हैं, उनके पास जाते ही आपकी यह भूख जाती रहेगी; परन्तु इस यत्न से हुंडी करेंगे की

आगे रुपये रख देना और चरण पकड़ के दंडवत कर बारं-बार प्रार्थना करना तब हुंडी लिख देंगे;" और उन खलों ने आपका स्थान भी (जाकर) बता दिया ॥

संतों ने वैसाही किया। श्रीनरसी जी उठकर मिले, और बोले कि "मेरे बड़े भाग्य हैं कि आप आये, मैं क्या न्यौछावर करूं।"

(५४४) टीका। कवित्त (८४२-५४४=२९८)

सात सै रुपैया गिनि ढेरी करिदई आगे, लागे पग, "देवौ लिखि," कही बार बार है। जानो बहकाए, प्रभु दाम दै पठाये, लिखी किये मन भाये, "साह सांवल उदार है॥ वाही हाथ दीजियै, लै कीजियै निशंक काज;" गये जदुराजधानी पूछ्यौ सो बजार है। ढूंढि फिरि हारे भूख प्यास मीड डारे, पुर तजि भये न्यारे, दुख सागर अपार है ॥ ४३६ ॥ (६२९-४३६ = १९३)

वार्तिक तिलक।

संतों ने ७००) (सात सौ) रुपए आपके आगे रख प्रणाम कर बारंबार कहा "हमको हुंडी लिखि दीजिये;" आपने जान लिया कि लोगों ने इनको भरमा के भेजा है। फिर निश्चय किया कि "प्रभु ही ने मेरे लिये यह द्रव्य भेजा है। सो उन्हीं को हुंडी लिख दूं।" प्रभु ही के नाम से लिख दिया और बता दिया कि "हमारे आढ़तिया बड़े उदार 'साँवलसाहु' हैं, उन्हीं के हाथ हुण्डी देकर

रुपए लेकर अपना कार्य्य करना"।

संत हुंडी लेकर द्वारिका आ नगर में 'सांवलियासाहु' की कोठी पूछने लगे। किसी ने नहीं बताई; भूख प्यास छोड़ बहुत ढूंढ़ा पर नहीं पाया; तब अति दुखी होकर द्वारिका के बाहर गये॥

(५४५) टीका। कबित्त (८४२–५४५=२९७)

साहकौ सरूप करि, आये कांधे थैली धरि, "कौन पास हुंडी? दाम लिजियै गनाय कै"। बोलि उठे "ढूंढि हारे! भलेंजू निहारे आजु," कही "लाज हमैं देत, मैं हूं पाये आय कै॥ मेरौ है इकौ सौ वास, जानै कोऊ हरिदास, लेवौ सुखरासि, करौ चीठी दीजै जाय कै। धरे हैं रुपैया ढेर, लिख्यौ करौ बेर बेर," फेरि आय पाती दई; लई गरे लाइकै॥ ४३७॥ (६२९–४३७=१९२)

वार्तिक तिलक।

तब श्रीकृष्णचन्द्रजी सेठ का रूप कर, कंधे पर थैली धरे, आकर कहने लगे कि "किस के पास नरसी जी की हुंडी है? अपना दाम गिनाले! चुकाले!!" सुनकर संत बोले "अजी! हम तुमको ढूंढ़ कर हारगये, भले आये;" आप बोले कि "मुझको बड़ी लज्जा हुई कि आपको हुंडी के रुपए मिलने में विलम्ब हुआ। मेरा गृह एकान्त में है, कोई कोई हरिजी के दास जानते हैं; अपने रुपये लीजिये और हमारा पत्र भी नरसी जी को देकर कहना कि 'बारंबार

हुंडी लिखा करै, बहुत से रुपये यहां रक्खे हैं।" ।

सन्तों ने रुपये ले द्वारिका तीर्थ यात्रा कर, लौट आ, नरसीजी को पत्र दिया। श्रीनरसी मेहताजी अति हर्षित हो पत्र लेकर सन्तों को गले से लगाकर मिले ॥

(५४६) टीका । कवित्त (८४२–५४६ = २९६)

"देखि आये साह ?" दौरि मिले उत्साह अंग, वेऊ-रंग बोरे सन्त, संगकौ प्रभाव है। हुंडी लिखि दई, दाम लिये सो खवाय दिये, किये प्रभु पूरे काम, संतनि सों भाव है ॥ सुता ससुरारि, भयौ छूछक बिचारि, सास देत बहु गारिं, जाको निपट अभाव है। पिता सों पठाई कहि, "छाती लै जराई इनि, जौपै कछु दियौ जाय, आवैं" यह दाव है ॥ ४३८ ॥ (६२९–४३८ = १९१)

वार्तिक तिलक ।

इन संतों से श्रीनरसी जी ने पूछा कि "श्यामल साह को आप देख आये ?" साधुओं ने उत्तर दिया कि "हां"। तब ये संत, और नरसी जी, परस्पर बड़े उत्साह से मिले। संतों को भी अब यह ज्ञात होगया कि, ये हुंडी का व्यौपार नहीं करते; श्रीप्रभु ही ने हमको रुपये और दरसन दिये; इस से बड़भागी संत भी प्रेमरंग में डूब गये।

जो हुंडी के रुपये थे सो सबके सब नरसी जी ने सन्तों ही को खिला दिये; आपका संतों में भाव था इस लिये प्रभुने सब कामनाएं पूर्ण कीं ॥

श्रीनरसी जी की बड़ी कन्या के पुत्र हुआ, सो लोक

रीति में पिता के यहां से ' छूछक ' (ननसारा) अर्थात् वस्त्र भूषण पकवान आदिक सब जाता है, सो नहीं गया। तब उस कन्या की सासु जो बड़ी कर्कशा थी सो गालियां देने लगी। पुत्री ने आपसे कहला भेजा कि " यह सासु गालियां देकर मेरी छाती जलाती है, जो पिताजी के पास कुछ देने का हो-तो अवश्य आकर दें " ॥

(५४७) टीका । कवित्त (८४२–५४७=२९५)

चले गाड़ी टूटीसी, बूढ़े उभै बैल जोरि, पहुंचे नगर छोर, द्विज कही जायकै। सुनत ही आई देखि मुँह पियराई, फिरी " दाम नहीं एक तुम कियौ कहा आय कै ? " " चिंता जिनि करौ, जाय सासु ढिग ढरौ, लिखि कागद में धरौ अति उत्तम अघाय कै " । कही समझाय, सुनि निपट रिसाय उठी, कियौ परिहास, लिख्यौ गांव खुनसाय कै ॥ ४३९ ॥ (६२९–४३९ = १९०)

कागद = ... = पत्र ।

वार्तिक तिलक ।

एक टूटीसी गाड़ी में दो बूढ़े बैल जोड़ उसीपर चढ़, श्रीनरसी जी चले; जब उस ग्राम में पहुँचे, एक ब्राह्मण ने पुत्री से कहा कि " तुम्हारे पिता आये हैं " । उसने आकर देखा कि कुछ पदार्थ पास में नहीं ! तब अति उदास मुख कर कहने लगी कि " जो आप कुछ लाये ही नहीं तो आकर किया ही क्या ? "

आपने उत्तर दिया कि " चिन्ता मत कर, सासुके निक-

ट जाके कह कि "जोजो पदार्थ चाहें सो सब भले प्रकार एक कागद में लिख दें"। कन्या ने सासु से समझाकर ऐसाही कहा। वह बहुत रिसाकर कहने लगी कि "मुझ से हँसी की है"। फिर ग्रामभर के सब लोगोंकेनाम लिखवा दिये कि "इन सबको वस्त्र भूषण चाहिये"।

(५४८) टीका। कवित्त (८४२—५४८=२९४)

कागद लै आई देखि दूसरें फिराई पुनि भूलै पै न पाई जात 'पाथर' लिखाये हैं। रहिबे कौं दई ठौर, फूटी ढही पौरि जाकै बैठे सिरमौर आय बहु सुख पाये हैं॥ जल दै पठायौ भली भांति कै औंटायौ, भई बरषा, सिरायौ, यौं समोयकै अन्हाये हैं। कोठरी सँवारि, आगें परदा सों दियौ डारि, लै बजाई तार बेस अगनित आये हैं॥ ४४०॥ (६२९—४४० = १८९)

वार्तिक तिलक।

पुत्री वह पत्र (सूची) लेकर आई; आपने देखकर कहा कि "फिर जा, किसी के लिये कोई वस्तु भूलगई हो, सो भी लिखवा ला, पीछे नहीं मिलेगी"। पुत्रीने फिर जाकर कहा; सासु बोली "अब क्या लिखाऊं? 'दो पत्थर' और लिखदे"।

श्रीनरसी जी के रहने के लिये किसीका एक फूटा टूटा घर था वही बता दिया गया था। श्री भक्त सिरमौर जी उसीमें जाकर विराजे, बड़े प्रसन्न हुए, पुत्री की सास क्रोधसे तपी तो थी ही, इससे जल बहुतही औंटाकर भेजा, उसी क्षण वर्षा हुई, जल पड़ने से वह जल भी यथार्थ होगया। आपने

स्नान किया। उस गृह में एक कोठरी थी उसको झार बहार कर द्वार में एक वस्त्र आड़ सा डालदिया, और वह सूचीपत्र भीतर रख, तानपूरा ले, प्रभु को स्मरण कर आप बजा २ के गानेलगे।

जितने पदार्थ उसमें लिखे थे सो सब उस कोठरी में प्रभुकृपा से पूर्ण होगये।

(५४९) टीका। कवित्त (८४२-५४९=२९३)

गांव पहिरायौ, छबि छायौ, जस गायौ, अहो हाटक रजत, उभै पाथर हू आये हैं। रहि गई एक भूलें लिखत अनेक जहां, "लैहों ताहीपास जापै सबमिलि पाये हैं" ॥ बिनती करत बेटी "दीजिये जू लाज रहै," दियौ मँगवाय, हरि फेरिकैं बुलाये है। अंग न समात सुता तात कौ निरखि रंग संग चली आई पति आदि बिसराये हैं॥४४१॥ (६२९-४४१ = १८८)

वार्तिक तिलक।

श्रीनरसी जी ने सोने रूपे के आभूषण, और सुन्दर वस्त्र सम्पूर्ण ग्राम के लोगों को पहिनाया; सब छबि से छागये; आपका आश्चर्य यश गाने लगे। और दो पत्थर भी सोने रूपे के* दिये। लिखने में उस ग्राम की एक स्त्री भूल गई थी वह आकर कहने लगी कि "जिससे सबको मिला है उसीके हाथों से मैं भी लूंगी"। कन्या ने आप से प्रार्थना की कि "इसको भी मँगवा दीजिये जिसमें मेरी

* कोई कहते हैं कि सोने की ईंट तथा चांदी की ईंट भी दी।

लाज रहै"। आपने फिर प्रभु को स्मरण कर वस्त्र भूषण मँगाकर उसको भी दिये।

श्रीनरसी जी की कन्या अपने पिता का यह प्रभाव प्रेम रंग उमंग देख अकथनीय आनन्दित हुई; पति आदिकों को बिसराकर, आपके साथही साथ जूनागढ़ चली आई॥

(५५०) टीका। कवित्त (८४२-५५० = २९२)

सुता हुतीं दोय, भोय भक्ति, रहीं घरही में, एक पति त्यागि, एक पतिहू न कियौ है। पुर मै फिरत उभै गाइन सुचाइन सों, धन सों न भेट, काहू नाम कहि दियौ है॥ आई लगीं गायबे कों, कही समझाय, "अहो पायबे को नाही कछू पावै; दुख हियौ है। चाहौ हरि भक्ति, तौ मुँडाय कै लड़ाय लीजै, कीजै वार दूर;" रहीं, प्रेम रस पियौ है॥ ४४२॥ (६२९-४४२ = १८७)

वार्तिक तिलक।

श्रीनरसी जी की दो कन्याएं थीं; एक का नाम "कुंवर सेना" दूसरी का "रतन सेना," सो हरि भक्ति में लैलीन होकर घर ही में रहगई, बड़ी अपने पति को तज के; और छोटी ने तो अपना बिवाहही नहीं किया।

जूनागढ़ में कोई सामान्य जाति की दो गानेवाली स्त्रियां आई, उनने बहुत ठिकाने उत्साह से गान किया, परंतु एक पैसा भी नहीं मिला! किसी ने कहदिया कि "नरसीजी के यहां जाकर गाओ;" वे आकर गाने लगीं। आपने उनको समझाकर कहा कि "यहां कुछ मिलेगा नहीं, पीछे

तुम्हारा हृदय दुखी होगा; " उनने नहीं माना; तब आपने कहा कि " यहां धन नहीं मिलेगा, श्रीहरि भक्ति चाहौ तौ बालों को मुड़ाकर बिरक्त होकर आओ, प्रेम से गाकर प्रभु को लाड़ लड़ाओ। " उन दोनोंने ऐसाही किया। आपके यहां रहीं और प्रेमरस पान करने लगीं।

(५५१) टीका। कवित्त (८४२-५५१ = २९१)

मिलीं उभै सुता, रंग झिलीं संग गायन वै, चायनि सों नृत्य करैं, भायनि बताय कैं। " सालंग " है नाम मामा मंडलीक मंत्री रहै कहै "बिपरीत बड़ी" राजा सों सुनाय कैं॥ बड़े बड़े दंडी और पंडित समाज कियौ, करौ वाकी भंडी, देश दीजिए छुटाय कैं। आये चार चोबदार "चलौ जू विचार कीजै भयौ दरवार हमै दिये है पठाय कैं" ॥ ४४३ ॥ (६२९-४४३ = १८६)

चोबदार = چوبدار = दण्डधारीभृत्य।

वार्तिक तिलक।

अब तो श्रीनरसी जी की प्रेमवती दोनों कन्याएं और साथ साथ वे दोनों रंगभरी गानवती ये चारों मिलके प्रभु के आगे गानपूर्वक बाजे बजा २ भाव बता २ कर नाचा करती थीं।

यह सब देख " सालंग " नाम ब्राह्मण जो श्रीनरसी जी का मामा और जूनागढ़मंडल के राजा का प्रधान मंत्री था, उसने राव (राजा) को सुनाकर कहा कि " नरसी बड़ा बिपरीत आचरण कर रहा है " सो, राजा की अनु-

मति लेकर बड़े २ दंडी और पंडितों का समाज इकट्ठा कर उसने कहा कि "आप सब उसको शास्त्ररीति से परास्त कर कुमार्गी ठहराइये, तब हम देश से निकाल देंगे"। यह कहकर चार चपरासी भेजे कि "जाकर नरसी को बुला लाओ"

आकर उनने आप से कहा कि "चलो, राजसभा में पंडितों का समाज बैठा है, सो वहां वाद और विचार के निमित्त तुमको सालंग जी ने बुलाया है, हमें इसी लिये भेजा" ॥

(५५२) टीका। कवित्त (८४२–५५२ = २९०)

"चारौं तुम जावो टरि, भयो हमै राजा डर; "सकै कहा करि? अजू चलैं संग संगहीं"। नाचत बजावत ये चलीं ढिग गावत सुभावत मगन जानी भीजि गईं रंगहीं॥ आये वाही भांति, सभा प्रभा हत भई; तऊ बोले कहा रीति यह जुवती प्रसंग हीं?" कही "भक्ति गंध दूरि, पढ़ै पोथी, परी धूरि, श्री शुक सराही तिया माथुरनि भंगहीं" ॥ ४४४ ॥ (६२९–४४४ = १८५)

वार्तिक तिलक।

श्रीनरसी जी ने सुनकर दोनों गानेवालियों तथा अपनी सुताओं से कहा "कि"तुम चारौ कहीं टल जावो, मुझको राजा का भय है"। उन्होंने उत्तर दिया कि "राजा क्या करसकता है? हम चारों की चारों आपके साथ ही सभा में चलैंगी," और गाते बजाते नाचते, प्रेमरंग में भींगी, भाव में मग्न चलीं; उसी प्रकार चारों प्रेमवतीयों को

साथ लिये श्रीनरसी जी सभा में आये। आपका भक्ति तेज देख वह सभा प्रभाहत होगई सब के मुख उतर गए।

तथापि पूछा कि यह कौन रीति है और किस ग्रंथ में लिखी है कि अपने साथ में निरंतर स्त्रियों को रखते हौ? श्रीनरसी जी ने उत्तर दिया कि "आप सब को भगवत भक्ति का गंध मात्र भी नहीं प्राप्त हुआ! इससे आपकी इस कोरी पंडिताई पर धूल पड़गई! स्त्री हो या पुरुष हो, जिसमें भगवत भक्ति हो उसीका साथ करना चाहिये; देखिये, श्रीमद्भागवत में परमहंस श्रीशुकदेव जी ने मथुरा वासी ब्राह्मणों की स्त्रियों की कैसी श्लाघा प्रशंसा की है; और उन ब्राह्मणों ने स्वयं अपनी भक्तिवती स्त्रियों की प्रशंसा कर अपने को धिक्कार दिया है" ॥

(५५३) टीका। कवित्त (८४२–५५३ = २८९)

बोलि उठ्यो विप्र एक "छूछक प्रसंग देख्यौ;" कह्यौ रसरंग भर्यो, ढर्यो नृप पांय में। कही "जू विराजौ, गाजौ, नित सुख साजौ जाय," किये हरि राय बस, भीजे रहौ भाय मे॥" धारौ उर और, सिरमौर प्रभु मंदिर में सुन्दर केदारौ राग गावै भरे चाय मै। स्याम कंठ माल टूटि आवत रसाल हियें, देखि दुख पावै परे विमुख सुभाय मै ॥ ४४५ ॥ (६२९–४४५ = १८४)

वार्तिक तिलक।

श्रीनरसी जी का भक्तिप्रभाव युक्त उत्तर सुन, प्रतिपक्षी लोग परास्त हुए; तब एक हरिभक्त ब्राह्मण देव ने

राजा से श्रीनरसी जी के छूछक के प्रसंग का प्रभाव कह सुनाया कि "महाराज! मैंने अपने नेत्रों से देखा है कि आपने एक कोठरी में पट डालकर प्रभुका यश गान किया सो अनेक प्रकार के अमूल्य भूषण वसन निकले, ग्रामभर को पहिनाया"। सुनकर राजा श्रीनरसी जी के चरणों में प्रणाम कर बोला "आप जाके सुखपूर्वक बिराजिये, श्री भगवन्नाम यश सदा गान कर आनन्द से गरजिये, क्योंकि आपने श्रीहरि को वश करलिया; सो उनके भाव प्रेम में मग्न रहिये।" सुनकर श्रीनरसी जी आनन्द से अपने घर चले आये॥

इसके अनंतर एक वार्ता और सुनकर हृदय में धारण कीजिये। भक्तसिरमौर श्रीनरसी जी प्रभु के मन्दिर में सुन्दर प्रेम उत्साह में भरे "केदारा" राग में प्रभु का गुन गान किया करते थे, तब श्रीश्यामसुन्दर के कंठ से फूलों की रसाल माला टूटकर आपको प्रसादी मिलती थी। यह चरित्र देख उस कठिन देश में बहुत लोग हरिभक्त होगए; पर जो विमुख स्वभाव के वश पड़े थे वे सहज ही दुखी हुए।

(५५४) टीका। कवित्त (८४३–५५४=२८९)

नृपति सिखायौ जाय, "वृथा जस छायो, काचे सूत में पुहायौ हार, टूटै ख्यात करी है।" माता हरिभक्त भूप कही "जिनि करौ कान," तऊ वानि राजस की माया मति हरी है॥ गयौ ढिग मन्दिर कै सुंदर मँगाय पाट तागौ

बटवाय करि माला गुहि धरी है । प्रभु पहिराय कह्यौ " गाय अब जानि परै " भरे सुर, राग और गायौ, पै न परी है ॥ ४४६ ॥ (६२९–४४६ = १८३)

वार्तिक तिलक ।

दुखी हो, जाकर दुष्टोंने राजा को सिखाया कि " देखिये इस का वृथाही यश छागया है, कच्चे सूत से माला पुहा के प्रभुको पहिनाकर गाने लगता है, फूलोंका भार पाके कच्चा सूत टूट पड़ता है; परन्तु विख्यात कर दिया कि माला टूट के मुझे प्रसादी मिलती है " । राजा की माता जी श्रीहरि भक्ति-युक्त थीं, उनने राजा से कहा कि " इन विमुखों की बात तुम मत सुना करो । "

तथापि, रजोगुणी प्रकृति तो थी ही, माया ने मति हर ली; इस्से राजा श्रीनरसी जी के मन्दिर में गया और सुन्दर रेशम मगाय कई परत बटाके माला गुँथवाकर प्रभु को पहिरा कर कहा " अब गाइये, जो माला टूट पड़े तो मुझे निश्चय होवे " । श्रीनरसी जी ने और २ रागों से (केदारा राग के अतिरिक्त) स्वर भरके गान किया परंतु माला नहीं गिरी॥

(५५५) टीका । कवित्त (८४३–५५५ = २८८)

विमुख प्रसन्न भये; तब तौ उराहने दै नये नये चोज हरि सनमुख भाषिये । " जानै ग्वाल बाल एक माल गहि रहे हिये, जिये लाग्यौ यही रूप, कहौ लाख लाखिये ॥ नारायण बड़े महा, अहा मेरे भाग लिख्यौ, करै कौन दूरि छबि पूर अभिलाखिये । म्हारौ कहा जाय आय परसै कलंक

तुम्हे, राखियै निसंक हार, भक्त मारि नाखियै"॥ ४४७ ॥
(६२९–४४७ = १८२)

वार्तिक तिलक।

माला का न टूटना देख दुष्ट विमुख लोग बड़े ही प्रसन्न हुए, तब श्रीनरसी जी प्रभु के सन्मुख नये नये चोजों से उलाहना देकर कहने लगे, कि "मैंने ग्वाल के बालक का स्वभाव जानलिया, ऐसे कनजूस कि पैसे की माला हृदय में गह रहे हो, दी नहीं जाती; मैं क्या करूं, मेरे जी को तो यही रूप प्यारा लगता है, लाखों भांति समझाने से नहीं समझता। देखो! श्री लक्ष्मीपति नारायण ऐसे महान बड़े हैं कि ब्रह्मांड भर को अनेक पदार्थ देकर पालन करते हैं और अपने भक्तों की इच्छा पूरी करते हैं; परंतु मेरे भाग में तो 'गोपाल' ही लिखे हैं उसको कौन अन्यथा कर सकता है? इसी से मैं इन्हीं की पूर्ण छबि की अभिलाषा करता हूं। यह दशा है कि एक माला अपने उर से अलग नहीं करते हो। हे प्रभो! इस कृपणता में मेरा क्या जायगा तुम्हीं को कलंक लगेगा; लो अब हार को निशंक अपने कंठ में रक्खे रहना; मुझ भक्त को मारडालो"॥

(५५६) टीका। कवित्त (८४३–५५६ = २८७)

रहै तहां साह, किये उभै लै विवाह जानैं तिया एक भक्त कहै "हरिकों दिखाइयै।" नरसी कहीहीं "भलै," सोई प्रभु वानी लई, सांच करि दई, गए राग छुटवाइयै॥ बोले, पट खोलि दिये, किये दरसन तानैं; ताने पट सौंवै वह

कही "देवौ भाइयै।" लिये दाम, काम कियौ, कागद गहाय
दियौ, दियौ कछु खाइबे कों, पायौ लै, भिजाइयै ॥४४८॥
(६२९–४४८ = १८१)

वार्तिक तिलक ।

प्रभु ने माला क्यों न दिया कि नरसी जी ने केदारा राग नहीं गया और केदारा राग क्यों नहीं गाया कि वह बन्धक (गिरो) रक्खा था ।

वहां एक सेठ था उसने दो बिवाह किये थे, उसकी एक स्त्री बड़ी भक्त थी; सो उसने श्रीनरसी जी से कई बार प्रार्थना की थी कि "मुझे श्री हरि के दरशन करा दीजे;" आपने कहा भी था कि "बहुत अच्छा" सो प्रभु ने अपने भक्त की वाणी सत्य करने तथा केदारा राग छुड़ाने के लिये नरसी जी के रूप से जाकर पुकारा । स्त्री वड़भागी ने केवाड़ खोल दरशन पाए, प्रणाम किया और उसका अभागी पती (साहु) मुँह पर वस्त्र ओढ़ सोता रहा, उसने दरसन नहीं किये, अपनी स्त्री से कह दिया कि "रुपए लेकर कागद (लिखत) दे दो" उसने द्रव्य लेकर राग वाली लिखत फेर दी और प्रेमसे कुछ मेवे मिठाई खिला विनय भी किया । (चौ०) यह जानब सत्संग प्रभाऊ । लोकहु वेद न आन उपाऊ ॥ प्रभुने कृपाकर उसको प्रेम से भिगा दिया ॥ कृपा की जय ॥

घर आने पर भी अभागों को भगवत भागवत के दर्शन यों नहीं होते । (दो०) तुलसी या संसार में, सब से मिलिये धाय । क्या जानैं केइ रूप महँ, नारायण मिलि जायँ ॥१॥

(५५७) टीका । कवित्त (८४३-५५७=२८६)

गहने धर्‍यो हो राग केदारौ, सो साह घर, धरि रूप नरसी कौ, जाय कै छुटायो है । कागद लै डार्‍यौ गोद, मोद भरि गाय उठे, आय झंन झंन स्याम हार पहिरायौ है ॥ भयौ "जै जै" कार, नृप पाय लपटाय गयौ, गह्यौ हियें भाव सो प्रभाव दरसायौ है । बिमुख खिसाने भये, गये उठि, नये नाहिं, बिन हरि कृपा भक्ति पंथ जात पायौ है ॥ ४४९ ॥ (६२९-४४९=१८०)

वार्तिक तिलक ।

श्रीनरसी जी ने संत सेवा के लिये कुछ द्रव्य लेकर केदारा राग सेठके हां गिरो रख दिया था । सो यों श्रीनरसी जी का रूप धारण कर रुपए दे, राग छुड़ा, गिरवी वाला पत्र फेर लाकर, प्रभु ने श्रीनरसी जी के गोद में डाल दिया; तब आप जान गये कि कृपासिन्धु प्रभु छुड़ा लाये । इस्से आनन्द युक्त केदारा राग गाने लगे ।

और दिन तो माला ही टूट पड़ती थी, उस दिन कृपालु प्रभुकी मूर्ति ने स्वयं चल के झँन झँन नूपुर बजाते आकर श्रीनरसी जी को अपने करकंज से ही माला पहिना दी । देखकर सब भक्तोंने "जय जय, धन्य धन्य" किया; राजा श्रीनरसी जी के चरणों में लिपट गया । और यह प्रभाव देख हृदय में भक्तिभाव को उसने धारण किया ।

अभागे दुष्ट बिमुख लोग जो थे वे लज्जित हो, खिसिया के, उठ गये; परंतु श्रीनरसी जी को और प्रभुको प्रणाम तक

नहीं किया। जान लो, बिना प्रभु की कृपा के, भक्तिपथ के सन्मुख कोई कैसे हो सकता है ? (चौ०) जो पै दुष्ट हृदय सो होई। मोरे सन्मुख आवकि सोई ॥

श्रीनरसी जी मेहता का वह पद "पद प्रसङ्गमाला" ग्रन्थ में नागरीदास के, संग्रहीत है ॥

रतन सेठ ने श्रीनरसी जी के ठाकुर जी से मनता की कि "यदि मुझे पुत्र होवै तो मैं अमुक सामग्री से आपकी पूजा करूं।" श्रीहरिकृपा से उसी सम्वत्सर के भीतर उसको लड़का हुआ। सेठानी (लड़के की माता) ने लाख कहा परन्तु कृपण रतन ने बहुत काल तक टाला ही किया पूजा नहीं ही चढ़ाई। लड़के के आत्मा ने अपने शरीर को त्याग दिया। तब तो रतनसेठ बड़ाही बिकल हो श्रीनरसी जी के चरणों पर गिरा। उसकी स्त्री को अति दुखी देख श्रीनरसी जी ने वृत्तान्त पूछा तब दम्पति ने मन्नित की वार्ता और उसका न पूरा करना कह कर लड़के के मृत्यु की बात कही और दोनों रोने चिल्लाने लगे। श्रीनरसी जी परम दयालु ने (जो सेठानी की भक्ति से प्रसन्न रहा करते थे) प्रभु से बड़ी प्रार्थना की। हरि ने कृपा कर उसके पुत्र को जिला दिया। दम्पति ने बड़े प्रेम तथा धूम से ठाकुर जी की पूजा की। और रतनसेठ भी बड़ा भक्त हो गया ॥ यह घटना सम्बत १६५२ की है ॥

(५५८) टीका। कवित्त (८४३-५५८=२८५)

करन सगाई आयौ, पायौ वर भायौ नहि, घर घर फिर्‌यौ,

द्विज नरसी बतायौ है। आय, सुख पाय, पूछ्यौ, सुत सो दिखाय दियौ, कियौ लै तिलक मन देखत चुरायौ है॥ "अजू हम लायक न;" "तुम सब लायक हौ" सायक सो छुट्यौ जाय नाम लै सुनायौ है। सुनत ही, माथौ ढोरि, कहैं "ताल कूटा वह, बाल बोरि आये, जावो फेरि, दुख छायौ है" ॥४५०॥ (६२९–४५० = ७९१)

ढोरि, ठोकि, फोरि, पाठान्तर हैं॥

"लायक़" = لائق = योग्य।

वार्त्तिक तिलक।

एक ग्राम से किसी धनी ब्राह्मण की कन्या के बिबाह के लिये उसका पुरोहित ब्राह्मण जूनागढ़ में आया। बहुत ठिकाने वर देखे परंतु उसको कोई अच्छा न लगा; किसी ने कहा कि "एक पुत्र नरसीजी के बहुत सुन्दर है"। सुखपूर्वक आके उस ब्राह्मण ने श्रीनरसी जी से पूछा। आपने पुत्र को दिखा दिया; देखते ही विप्रजी का मन हर गया। और उन ने तत्काल तिलक करही तो दिया।

नरसीजी ने कहा कि "कन्या के पिता धनी हैं, मैं उनके योग्य नहीं हूं" पुरोहितजी ने उत्तर दिया कि "आप सब लायक हैं"। तिलक करके वाण के समान वेग से आये, और कन्या के पिता से नाम सुनाया कि "मैं नरसी जी के पुत्र को तिलक चढ़ा आया हूं।" सुनते ही कन्या का पिता दुःखित तथा उदास हो माथा हिलाके और ठोंक के कहने लगा कि "वह तो ताल कूटा है; मेरी कन्या को

तुमने तो डुबा दिया, मुझको इस बात का बड़ा ही दुख है; जाओ, तिलक फेर लाओ" ॥

(४५९) टीका। कवित्त (८४३-५५९ = २८४)

"काटिकै अंगूठा डारो, तब सो उचारो बात, मन मै बिचारो, कियौ तिलक बनाय कै"। जाने 'सुता भाग ऐसे' रहे सोच पागि सब आवै जब व्याहिबे कौ धन दै अघाय कै" ॥ लगन हूं लिखि दियौ, दियौ, द्विज आनि लियौ, डारि राख्यौ कहूं, गावैं ताल ए बजाय कै। रहे दिन चार, पै बिचार नहीं नेकु मन, आये कृष्ण रुक्मिनी जू, झूमि मिले धाय कै ॥ ४५१ ॥ (६२९-४५१ = १७८)

वार्तिक तिलक।

ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि "मैं जिस अंगूठे से भले प्रकार तिलक कर आया हूं उस को यदि काट डालो तो ऐसी बात कहो, अब वह अन्यथा नहीं हो सकती, मन में बिचार तो करो, मैं जाकर क्या कहूंगा ?" ऐसे वचन सुन उसने जाना कि "मेरी कन्या के ऐसे ही भाग थे"; फिर सोच युक्त हो आपस में कहने लगे कि "जब विवाह करने आवें तब बहुतसा धन दाइज देकर उसको अपने योग्य कर लिया जायगा।"

फिर लग्न पत्र भी लिख दिया। ब्राह्मण ने आकर नरसी जी को दिया; आप ने उस पत्र को कहीं योंहीं डाल दिया, और ताल बजा २ के श्रीहरि गुण गाने लगे। जब विवाह के चार ही दिन रह गये, और आप को उस की कुछ भी चिंता व विचार चरचा तक नहीं, तब श्रीकृ-

ष्णचन्द्र और श्री रुक्मिणी जी कृपा कर, रूप धर, आप के घर आये । आप प्रेम से झूम २ दौड़ कर पग में आ लगे ।

(५६०) टीका । कवित्त (८४३-५६०=२८३)

ठौर ठौर पकवान होत, तिया गान करैं, घुरत निसान, कान सुनिये न बात है । चित्र मुख किये लै विचित्र पट्ट रानी आय, घोरी रंग बोरी पै चढ़ायो सुत, रात है ॥ करी सो ज्यौंनार, तामें मानस अपार आये द्विजनि विचारि पोट बांधी, पै न मात है । मणिमै ही साज वाज गज रथ ऊंट कोर झमकैं किशोर आज सजी यों वरात है ॥ ४५२ ॥ (६२९-४५२ = १७७)

वार्तिक तिलक ।

श्रीनरसी जी के गृह में आकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी जी ने अपने संकल्प से ही, सब ऐश्वर्य प्रगट किये; अनेक ठिकाने पर पकवान मिठाई बनने लगी, बहुत सी स्त्रियां गान करने लगीं, मंगलीक बाजे इतने बजने लगे कि कानों में बात नहीं सुन पड़ती; स्वयं श्री पट्टरानी जी ने नरसी जी के पुत्र को मुख आदि अंगों में चित्र बिचित्र शृंगार कर प्रेम रंग से डूबी हुई घोड़ी पर चढ़ाया, नेग दिये, फिर ज्योंनार हुई, उसमें असंख्य लोग आये, ब्राह्मण लोगों ने बहुत से दिव्य पदार्थ देख २ बड़ी २ गठरियां बांधीं; परंतु वे पदार्थ घटने वाले तो थे ही नहीं । मणि सुवर्णों के साज से सजे कोटान हाथी, रथ, घोड़े, ऊंट, उपस्थित थे, उन पर किशोर अवस्थावाले दिव्य मनुष्य चढ़े झमक रहे । ऐसी अद्भुत प्रकार की बारात सजी॥

(५६१) टीका। कवित्त (८४३–५६१ = २८२)

नरसी सो कहैं गहे हाथ "तुम साथ चलौ, अंतरीक्ष मैं हूं चलौं, इती बात मानियै"। कही "अजू! जानौ तुम, मै तौ हियें आनौं यहै लहै सुख मन मेरो फेंट ताल आनियै"॥ आपहीं बिचारि सब भार सो उठाय लियौ, दियौ डेरा पुरी समधी की पहिचानियै। मानस पठायौ "दिन आयौ पै न आये," अहो! देखैं छबि छाये नर पूछे जू बखानियै॥ ४५३॥ (६२९–४५३ = १७६)

वार्तिक तिलक।

जब बरात सजगई तब श्रीकृष्णचन्द्र जी नरसी जी का हाथ पकड़ के बोले कि अब बरात को संग ले तुम चलो, और अंतरीक्ष से मैं भी चलता हूं, भला इतनी बात तो मेरी मान लो"। श्रीनरसी जी ने हाथ जोड़ प्रार्थना की कि "अजी महाराज! बरात और बिवाह, सब आप जानें आपका काम जानें, मैं तो यही जानता हूं कि जहां कहो फेंट बांध, ताल ले, आनन्द से आपका गुण गाता चलूं. मुझे और नहीं आता भाता।"

सुनकर प्रभु ने बिचारा कि सच कहते हैं। इससे सब भार आपही उठा, बरात लाकर समधी की पुरी के निकट डेरा करया। उधर समधी ने बिवाह का दिन जान, मनुष्यों को भेजा कि "देखो तो मार्ग में कहीं आते हैं?" वे आकर बरात देख पूछने लगे कि "यह बहुत सुन्दर बरात किसकी है?" बरातियों ने उत्तर दिया कि "श्रीमेहता

नरसी जी की यह बरात है" ॥

(५६२) टीका। कवित्त (८४३–५६२=२८१)

"नरसी बरात," मत जानौ यह नरसी की, नरसी न पावै ऐसी समझ अपार है। आय के सुनाई, सुधि बुधि बिसराई, कहो "करत हसाई, बात भाखौ निरधार है" ॥ गयो जो सगाई करि दर वर आयो द्विज निज अँग मात केसें रंग बिस्तार हैं। कही एक "एक घास धन रासि सों न पूजे किहूं; चहूं दिसि पूरि रही देखौ भक्ति सार है ॥४५४॥ (६२९–४५४ = १७५)

वार्तिक तिलक।

"श्रीनरसी मेहताजी की बरात है" यह सुन वे लोग बिचारने कहने लगे कि "यह नरसीजी की बरात तो नरों की बरात के समान नहीं है, अर्थात् देवतों की बरात के समान है, ऐसी बरात इस लोक में तो नरसी नहीं पा सकते"। ऐसी समझ अपार है। और उन लोगों ने, दौड़ के आकर बेटी के बाप से बरात की बड़ी बड़ाई की। सुन कर उसकी सुध बुध भूल गई। विश्वास न करके वह कहने लगा कि "हँसी करते हो ? यथार्थ कहो;" इतने में जिस ब्राह्मण ने वर को तिलक किया था, सो भी बरात देख वहां ही आये। उन ब्राह्मणजी के प्रेम रंग का उमंग अंग में नहीं समाता था; वे कहने लगे कि "जितना तुम्हारा धन है सो बरात के घोड़ों के घास मात्र को नहीं पूरा पड़ सकेगा; देखो श्रीनरसी जी की भक्ति की सारांश चारो दिशाओं

में छा रहा है" ॥

(५६३) टीका । कवित्त (८४३—५६३ = २८०)

चले अचिरज मानि, देखि अभिमान गयौ, लयौ पाछौ ब्राह्मनको "हमै राखि लिजियै"। जाय गहि पाय रह्यौ भाय भरि "दया करौ;" गए दृगभरे पाव परे "कृपा कीजियै"॥ मिले भरिअंक, लै दिखायौ सो मयंक मुख; "हूजियै निसंक इन्है भार सुता दीजियै"। व्याह करि आये; भक्तिभाव लपटाये; सब गाये गुण जाने जेते; सुनि सुनि जीजियै ॥ ४५५ ॥ (६२९-४५५ = १७४)

वार्त्तिक तिलक।

कन्या का पिता ब्राह्मण के वचन सुन आश्चर्य मान, स्वयं चल बरात देखा, अपने धनाढ्य पनेका अभिमान छोड़, ब्राह्मण के चरणों में सीस नवाके कहने लगा कि "अब मेरी लज्जा मर्य्यादा आपही के रखने से रह सकती है।" ब्राह्मण जी बोले कि चलो, सजल नेत्र प्रेम से श्रीनरसी जी के चरणों को पकड़ के कहो कि "मेरी लज्जा आपके आधीन है, मर्य्यादा आपके ही हाथों में है आपके रक्खे रह सकती है, दया कीजिये अपना दास जानिये"।

उसने ऐसा ही किया। नरसीजी ने समधी (सम्बन्धी) को उठाके, अंक भर मिलके, लाके श्रीप्रभु के मुखचन्द्र का दर्शन करवाया। प्रभुने आज्ञा दी कि "तुम निशंक रहौ, बरात के सत्कार का भार भी नरसी ही को है, तुम केवल कन्या दान मात्र करदो"। फिर दोनों ओर का सँभार

श्रीप्रभु ही ने किया।

बड़े आनन्द और धूमधाम से विवाह कर श्रीनरसी जी के घर आकर ऐश्वर्य्य सहित आप अन्तर्धान होगये।

नरसी जी ब्याह कर कराके आये तो, परंतु अपनी भक्ति भाव ही में अधिकतर लिपटे रहे॥ भगवत भक्त का यश संसार में प्रसिद्ध हुआ। आपके गुण जितने हम जानते थे, उतने ही गान किये; इन गुणोंको सुन२ के जीना योग्य है॥

श्रीनरसी मेहता जी का समय, सम्वत १६०० से, बरंच १५५० से, १६५० तक, के भीतर निश्चय है॥

श्रीदिवदास पुत्र श्रीजसोधर जी।

(५६४) मूल। छप्पय (८४३–५६४=२७९)

"दिवदास" वंश "जसोधर" सदन भई भक्ति अन पायनी॥ सुत कलत्र संमत सबै गोविन्द परायन। सेवत हरि हरिदास द्रवत मुख 'राम'-रसायन॥ सीतापति कौ सुजस प्रथम ही गवन बखान्यौ। दै सुत दीजे मोहि कवित सबही जग जान्यौ॥ गिरा गदित लीला मधुर संतनि आनँददायनी। दिवदास वंस जसोधर सदन भई भक्ति अन पायनी॥ १०९॥ (२१४–१०९=१०५)

वार्तिक तिलक।

श्री भगवतभक्त "दिवदास" जी के वंश में उत्पन्न जी श्री "जसोधर" जी थे, उन के घर भर के जनों को अन-

पायनी श्रीराम भक्ति हुई, आप के पुत्र और स्त्री जन सब एकमत होकर भगवत में परायण हुए; मन तन से श्रीहरि और हरिदास वैष्णवों की सेवा करते थे, और सबके मुखचन्द्रों से श्रीसीताराम यश रसामृत द्रवता था।

एक दिवस आपकेहां श्रीसीतापति जी का सुयश श्रीरामायण होता था, उस में जो श्रीविश्वामित्र जी की यज्ञ की रक्षा हेतु प्रभु के प्रथम गवन का प्रसंग आया, वह कविता सब जगत जानता है, मुनि ने श्रीचक्रवर्ती जी से मांगा कि "श्रीराम लक्ष्मण दोनों पुत्र मुझे दीजिये," तब श्रीअवधेश महाराज ने दिये, आप मुनि के साथ चले। सो, श्रीजसोधर जी इस कथा को पहिले पहिल सुनते ही प्रेमावेश से उस ध्यान में तन्मय हो गये और बोले "प्राण-नाथ! मैं भी साथही चलूंगा"।

सुनकर प्रभु ने ध्यान ही में प्रत्यक्ष सरीखा दरशन देकर कहा कि "तुम यहांही रहो, हम यज्ञ रक्षा करके शीघ्र आते हैं"। वह वियोग वचन सुन आपने प्राण न्योछावर कर दिया। इस प्रकार की संतन को आनन्द देनेवाली मधुर लीला हुई

कहते हैं कि "श्रीदिद्वासात्मज श्री जसोधर" जी के पुत्र जो बड़े भक्त थे, उनका नाम श्री अभयराम जी था।

(५६५) मूल। छप्पय (८४३-५६५=२७८)

(श्री) नंददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभु हित रँग मगे॥ लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर। सरस उक्तियुत जुक्ति भक्ति रस गान उजा-

गर ॥ प्रचुर पयध लौं सुजस "रामपुर" ग्राम निवासी। सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी ॥ चन्द्रहास अग्रज * सुहृद, परम प्रेम पै मै पगे। (श्री) नंददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभु हित रँग मगे ॥ ११० ॥ (२१४ −११० = १०४)

* "अग्रज" पाठान्तर अंगज अर्थात् पुत्र।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीनन्ददास जी आनन्द निधि रसिक प्रभु के प्रेम में मिले हुए थे; श्री युगल लीला रसरीति पद ग्रन्थ की रचना में बड़े प्रवीण हुए; तथा भक्ति रस युक्त सरस उक्ति युक्ति कथन और गान में अति उजागर थे। आप "श्री रामपुर" ग्राम के निवासी थे; समुद्र पर्यंत आपका सुजस विख्यात हुआ और सम्पूर्ण सुन्दर कुल वाले ब्राह्मणों में उत्तम ब्राह्मण होते हुए भी श्रीभगवतभक्तों के चरण रेणु की उपासना सेवा करते थे।

श्रीचन्द्रहास जी के बड़े भ्राता श्रीनन्ददास जी अति सुहृद परम प्रेम रूपी जल में मीन के समान पगे रहते थे। आप श्रीकृष्ण जस काव्य वाले अष्ट छाप (आठ प्रसिद्धों) में एक थे। आप के ग्रन्थ, "पंचाध्यायी, रुक्मिणीमंगल, नाममाला, अनेकार्थ, दानलीला, मानलीला" आदिक प्रसिद्ध हैं ॥

सुन्ते हैं कि "अष्टछाप" में ये हैं—

१ सूरदास	५ चतुर्भुजदास
२ कृष्ण दास	६ चेत स्वामी
३ परमानन्द	७ नन्द दास
४ खिन्नदास चेत स्वामी	८ गोविन्द स्वामी

"नाममाल" तथा "अनेकार्थ" देखने योग्य हैं।

श्रीजनगोपाल जी।

(५६६) मूल। छप्पय (८४३-५६६=२७७)

संसार सकल व्यापक भई जकरी जन गोपाल की॥ भक्ति तेज अति भाल संत मंडलको मंडन। बुधि प्रवेश भागौत ग्रन्थ संशय कौ खंडन॥ नरहड ग्राम निवास देस वागड़ निस्तार्‍यौ। नवधा भजन प्रबोध अनन्य दासन व्रत धार्‍यौ॥ भक्त कृपा वांछी सदा पदरज राधा लालकी। संसार सकल व्यापक भई जकरी जन गोपाल की ॥ १११ ॥ (२१४—१११ = १०३)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीजनगोपाल जी की बनाई हुई प्रभु यश मई "जकड़ी" जगत भर में व्याप्त होगई। आपका भाल (ललाट) भक्ति तेज से प्रकाशमान, सन्तों के मंडल का मंडन करता था; आपकी बुद्धि सब संशयों की खंडन करनेवाली श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में अतिशय प्रविष्ट हुई। नरहड़

नाम के ग्राम में निवास कर भक्ति उपदेश से उस बागड़ देश भर को निस्तार किया। नवधा भक्ति के सहित प्रबोध युक्त अनन्य भगवत दासता का व्रत धारण किया; और, श्री हरि भक्तों के कृपाकी तथा श्री राधाकृष्ण जी के चरणों की रज की वांछा सदा रखते थे। ऐसे श्रीजन गोपाल जी की "जकरी" सारे जगत में फैल गई।

श्रीमाधवदास जी।

(५६७) मूल। छप्पय (८४३–५६७=२७६)

माधौ दृढ़ महि ऊपरैं प्रचुर करी लोटा भगति॥
प्रसिद्ध प्रेम की बात, "गढागढ" परचौ दीयौ।
उंचे तें भयौ पात श्याम सांचौ पन कीयौ॥
सुत नाती पुनि सदृश चलत ऊही परिपाटी।
भक्तनि सों अति प्रेम नेम नहिं कितहुँ अँग घाटी॥
नृत्य करत नहिं तन सँभार समसर जनकन की सकति। माधौ दृढ़ महि ऊपरैं प्रचुर करी लोटा भगति॥ ११२॥ (२१४–११२=१०२)

वार्तिक तिलक।

श्री माधौ भक्त जी ने अति प्रेम से भूमि के ऊपर लोटने की भक्ति को दृढ़ता से विख्यात किया (फैलाया)। आप ने "गढ़ागढ़" में परचौ दिया; बहुत ही ऊंचे से गिरे और श्रीश्याम सुन्दर जी ने रक्षा कर आपका पन पूरा किया। आप के

पुत्र नाती भी उसी परिपाटी से प्रेम पथ में चले, और भगवत भक्तों से सकुटुम्ब आपका प्रेम नेम पूरा था किसी अंग में घट नहीं था।

श्री हरि गुन गान कर नाचने लगते तब शरीर का कुछ सँभार नहीं रहता था, और गृहस्थाश्रम में इस प्रकार रहे कि जैसे श्री जनक वंशी जल कमल–पत्रवत संसार से निर्लेप रहते थे॥ आप "गढ़ा गढ़" के रहनेवाले थे।

श्रीवल्लभाचार्य्य महाप्रभु जी के समसामयिक श्रीजगन्नाथपुरी वाले विख्यात प्रथम श्रीमाधवदास जी के अतिरिक्त, ये दूसरे श्रीमाधवभक्त जी लोटन भक्ति फैलाने वाले, तथा तीसरे एक श्रीमाधव ग्वाल जी साधु सेवी परम भागवत हुए। एक चौथे माधव जी सुकवि "बरसाने" वाले हुए॥

(५६८) टीका। कवित्त (८४३–५६८=२७५)

गढ़ागढ़ पुर नाम "माधौ" बढ़ि प्रेमि, भूमि लौटै, जब नृत्य करै, भूलै सुधि अंग की। भूपति बिमुख, झूठ जानिकै परिक्षा लई, आनि तीन छाति पर देखी गति रंग की॥ नूपुरनि बांधि, नाचि, सांच सो दिखाय दियौ, गिऱ्यो हूं कराह मध्य, जियौ, मति पंग की। बड़ौ त्रास भयौ नृप, दास बिसवास बढ़्यौ, बढ्यौ उर भाव, रीति न्यारी या प्रसंग की॥ ४५६॥ (६२९–४५६=१७३)

वार्तिक तिलक।

गढ़ागढ़ नाम नगर में "माधौ" भक्त चढ़ बढ़ के प्रेमी हुए; नृत्य करते करते आपको अपने सब अंग की सुधि भूल जाती थी तब भूमि में लोटने लगते थे। वहां का राजा बिमुख था; उसने जाना कि "झूठ ही

पाखंड करते हैं;" इससे परीक्षा लेने के अर्थ ऊंची (तीसरी) छत पर बिछौना बिछवा कर आपके प्रेम की गति देखने लगा। आप नूपुर बांधके नाचने लगे; फिर सच्चे प्रेम से लोटते हुए तप्त घृत के कड़ाह में गिर पड़े। परन्तु प्रभु ने इस प्रकार की रक्षा की कि आप का एक बाल भी न बांका हुआ।

देखकर सब की बुद्धि पंगु हो गई। राजा को बड़ा त्रास हुआ; भगवतदासों में विश्वास बढ़ा; और श्री माधौ भक्त जी का दास होकर भाव भक्ति की रीति ग्रहण की।

इस प्रेम प्रसंग की रीति जगत से न्यारी है॥

दोहा—"गाए नीकी भाँति सों, कवित रीति भल कीनि।
श्रीमोहन अपनाईके, अङ्गीकृत करि लीनि॥"
(श्री ध्रुवदास जी)

दोहा—"तनक न रही विरक्तता, पड़ी द्दगन की छाप।
कहुँ माला बटुआ कहूं, कहुँ गीता कहुँ आप॥१॥
पंडित पूजा पाकदिल, यह गुमान मति लाव।
लगै जरब अँखियान की, सबै गरब मिटि जाव॥२॥"
(भानुप्रताप तिवारी)

श्रीअङ्गद जी।

(५६९) मूल। छप्पय (८४३–५६९=२७५)

अभिलाष भक्त "अंगद" को पुरुषोत्तम पूरन कर्‌यो॥ नग अमोल इक, ताहि सबै भूपति मिलि जाचैं। साम, दाम, बहु करैं; दास नाहिन

मत काचैं ॥ एक समै संकट मैं, लै वै पानी महि डाऱ्यौ । "प्रभू तिहांरी वस्तु," बदन तें वचन उच्चाऱ्यौ ॥ पांच दोय सत कोस तें, हरि हीरा लै उर धऱ्यौ । अभिलाष भक्त "अंगद" कौ पुरुषोत्तम पूरन कऱ्यौ ॥ ११३ ॥ (२१४–११३ = १०१)

वार्तिक तिलक ।

श्री "अंगद" भक्त जी की अभिलाषा श्रीपुरुषोत्तम जगन्नाथ जी ने पूरी की । आप के पास एक बड़ा ही अनमोल नग (रत्न) था; उसको राजा और उनके समीपी लोग मांगते; साम, दान, आदिक बहुत दिखाए (किये) । परंतु ये तो सच्चे भगवत दास थे, इन ने नहीं ही दिया । एक समय संकट में पड़, मन से ध्यान कर, आपने मुख से कहा "हे प्रभो ! यह आपकी वस्तु है, सो आप लीजिये;" और इतना कह रत्नको जल में डाल दिया । श्रीजगन्नाथ जी ने ७०० (सात सौ) कोस से लम्बा हाथ फैलाकर हीरा लेके अपने अंग में धारण किया ।

इस प्रकार प्रभु ने अपने भक्त की अभिलाषा पूर्ण की । आप का नाम पुनीत करनेवाला है । आपकी कविता नानक जी के "ग्रन्थ साहिब" में संग्रहीत है ॥

(५७०) टीका । कवित्त (८४१–५७० = २७१)

"रायसेन" गढ़ बास नृप सो "सलाह दी" जू,

ताको यह काका रहै, "अंगद" बिमुख है। ताकी नारी प्यारी, प्रभु साधु सेवाधारी उर, आये गुरु घर, कहैं कृष्ण कथा सुख है॥ बैठे भौन कौन? देखि कैसे मौन रह्यौ जात? बोल्यौ "तिया जात, कहा करौ नर रुख है?"। सुनि उठि गये; बधू अन्न जल त्यागि दये; लये पाव जाय बिषै बस भयौ दुख है॥ ४५७॥ (६२९–४५७ = १७२)

वार्तिक तिलक।

श्री अंगद सिंह जी क्षत्री "रायसेन" गढ़ के वासी, राजा, सिलाहदी सिंह के चाचा, प्रथम अवस्था में बिमुख थे; इनकी स्त्री रूपवती और भक्तिवती इनको बहुत प्यारी थी वह श्री हरि तथा संतों की सेवा में तत्पर हुई। एक दिवस उसके गुरु देव उसके घर आकर सुखपूर्वक भगवत कथा कहते थे, स्त्री आनन्द से सुनती थी। अंगद देखकर बोला "स्त्री जाति के समीप अकेले बैठकर यह क्या कर रहे हो?"।

वे सुनकर तत्काल ही उठके चले गये; और स्त्री ने अन्न जल दोनों छोड़ दिया। अंगद जी प्रथम विषय वश तौ थे ही दुखित हो, स्त्री के चरण पकड़, प्रार्थना करने लगे॥

(५७१) टीका। कवित्त (८४३–५७१ = २७२)

मुख न दिखावै, याहि देख्यौ ही सुहावै, कही "भावै सोई करौ नेकु बदन दिखाइयै। मैं हूं जल त्यागि दियौ, अन्न जात का पै लियौ, जीवौ जब नीको तब आपु कछु

खाइये ” ॥ बोली “ मोसों बोलो जिन, छाड़ौं तन याही छिन, पन सांचौ होतौ जो पै सुनत समाइये ” । “ कहौ अब कीजै जोई, मेरी मति गई खोई; ” भोई उर दया, बात कहि समझाइये ॥ ४५८ ॥ (६२९–४५८ = १७१)

वार्तिक तिलक ।

परन्तु नारी ने मुख ही नहीं दिखाया; इन को तो रात दिन उसका मुख देखना बड़ा ही अच्छा लगता था, विकल हो बोले कि “ जो तुम को अच्छा लगे सोई अब मैं करूं, मुझे अपना मुख मयंक तो थोड़ा दिखाओ, मैं ने भी अन्न जल तज दिया है, मुझे जीना तभी भला लगेगा कि जब तुम कुछ खाओगी ” । उसने उत्तर दिया कि “ मुझसे बोलो मत, नहीं तो इसी क्षण देह तज दूंगी, मेरा पन सच्चा तो तब था कि जब तुमने श्रीगुरू जी को रूखे वचन सुनाए थे मैं उसी क्षण तन को तज देती ” ।

अंगद जी ने सुन अति दीन होकर फिर बिनय किया कि “ अब तुम जो कहौ सोई मैं करूं, मेरी बुद्धि नष्ट हो गई । ” तब तो भक्तिवती को दया लगी, और समझाकर यों कहने लगी ॥

(५७२) टीका । कवित्त (८४३–५७२ = २७१)

“ वेई गुरु करौ जाय, पायन मैं परौ, ” गयौ, चायनि लिवाय ल्यायौ, भयौ शिष्य, दीन है । धारी उर माल, भाल तिलक बनाय कियौ, लियौ सीत, प्रीति कोऊ उपजी नवीन है ॥ चढ़ी फौज संग, चढ़्यौ बैरी पुर, मारि बंड्यौ,

कह्यो, टोपी लेके हीरा सत, एक पीन है। डारे सब बेचि, पाग पेच मध्य राख्यो मुख्य, भाष्यो "सो अमोल करौं जगन्नाथ लीन है ॥ ४५९ ॥ (६२९–४५९ = १७०)

फ़ौज् = "" = सेना।

वार्तिक तिलक।

कि तुम जाके मेरे महाराज जी के चरणों में पड़, भगवत की भक्ति के लिये उन्हीं को गुरू करो"। सुनते ही अंगद जी बड़े उत्साह और दीनता से जाकर गुरूजी को लिवा लाये और शिष्य हो, कंठ में श्रीतुलसी माला, भाल में तिलक अच्छे प्रकार से करके, भोजन कराय, अंगद जी ने श्रीगुरु की सीत (झूंठ) प्रसादी ली। कोई नवीन प्रीति भक्ति उत्पन्न हुई, बड़े विनीत हो, भक्तिमार्ग में यथार्थ चलने लगे। "भक्ति, भक्त, भगवंत, गुरु" की जय।

एक समय राजा सिलाहदी सिंह, सेना समेत किसी दूसरे राजा पर चढ़ा, साथ श्री अंगदसिंह जी भी थे: इन की विजय हुई। उस राजा की एक टोपी श्रीअंगदसिंह जी के हाथ आई, उसमें एक सौ एक हीरे लगे थे, सौ हीरे बेंचकर तो संतों की सेवा में लगा दिये और एक हीरा जो महामुख्य उत्तम और अनमोल था, उसको अपने पाग (पगड़ी) के पेच में रखके कहा कि "यह हीरा श्री जगन्नाथ जी को सप्रेम अर्पण करूंगा"॥

(५७३) टीका। कवित्त (८४३–५७३ = २७०)

काना कानी भई, नृप बात सुनि लई, कही हीरा वह

देय, तौ पै और माफ किये हैं । आय समुझावैं, बहु जुगति बनावैं, याके मन मै न आवै; जाय, सबै कहिदिये हैं ॥ अंगद बहिन लागै वाकी भूवा पागै, तासों "देवो बिष, मारो" फिरि तूही, पग छिये हैं ॥ करत रसोई घोरि गरल मिलायो पाक, भोगहूं लगायो, अजू आवो बोलि लिये हैं ॥ ४६० ॥ (६२९-४६० = १६९)

"माफ" = معاف = क्षमा ।

वार्तिक तिलक ।

इन १०१ (एक सौ एक) हीरों की वार्ता कानों कान होते २ राजा तक पहुँची । उसने आप के पास अपने मंत्रियों को भेजकर कहलाया कि "वह एक हीरा मुझ को दे देवैं, तो सौ हीरे मैंने क्षमा किये" वे लोग आकर बहुत युक्तियों से समझाये पर श्रीअंगद जी के मन में एक भी न आई । आप बोले "वह तो मैं श्रीजगन्नाथ जी को अर्पण कर चुका" ।

आकर उन सबों ने राजा से कहा कि "वह ऐसे नहीं देंगे" फिर कुमंत्रियों से राजा ने विष देना यों निश्चय किया, कि श्रीअंगद जी की बहिन जो राजा की फूफी (बूआ) लगती, और आपके ठाकुर जी की रसोई किया करती थी सो राजा ने उस के चरण पकड़कर कहा कि "विष दे कर इस को मार डाल पीछे तुझे बहुत धन द्रव्य दूंगा" वह स्त्री ही जाति सो थी रसोई में घोर बिष मिला, भोजन बना, प्रभुको अर्पण कर, उसने श्रीअंगद जी को प्रसाद पानेके लिये बुलाया ॥

(५७४) टीका। कवित्त (८४३–५७४ = २६९)

वाकी एक सुता, संग लैके बैठें जेवन कों, आई सो छिपाय, कही "जैवो कहूं गई है।" जेंवत न, वोधि हारी' तब सो बिचारी प्रीति, भीति, रोय मिली गरें, रीति कहि दई है॥ प्रभु लै जिवाये रांड, भांड कै निकासि द्वार, दै करि किवार, सब पायौ ओपनई है। वह दुख हियें रह्यौ! कह्यौ कैसे जात काहू? बात सुनी नृपहूं नै, जैसी भांति भई है॥ ४६१॥ (६२९–४६१ = १६८)

वार्तिक तिलक।

देखिये, श्रीअंगद जी की उसी बहिन की एक लड़की थी, आप नित्य उसको साथ लेकर प्रसाद पाते थे। उस दिन वह उसको कहीं छुपा आई। आपने उसको बुलाया, बहिन बोली "आप प्रसाद पाइये, वह कहीं खेलने निकल गई है," आपने प्रसाद नहीं पाया; उसने बहुत प्रकार प्रबोध किया तब भी नहीं ही पाया।

अपनी लड़की में आपकी इस प्रकार की प्रीति देख, लज्जित हो बिष के भय से गले में लगके रोने लगी, और विष दिवाने का सब वृत्तांत भी कह सुनाया। सुनकर अंगद जी ने कहा कि "रांड़! तूने मेरे प्रभुको विष भोग लगा दिया! अब मुझे कहती है मत पावो;" तत्काल उसको बाहर निकाल, कपाट दे, आप विष-मिश्रित सब प्रसाद पागये।

आपके भाव विश्वास से वह विष अमृत सरीखा हो गया क्योंकि प्रभुको विष भोग लग जाने की बात आपको बड़ी

ही दुखद थी। प्रसाद पाने से आपके देह में नवीन छवि प्रकाशित हुई; जिस प्रकार यह समस्त वार्ता हुई राजा सुन के बड़ा लज्जित तथा विस्मित हुआ॥

(५७५) टीका। कवित्त (८४३—५७५=२६८)

चले नीलाचल, हीरा जाय पहिराय आवैं, आय घेरि लीने नृप नरनि, खिसाय कै। कही डारि देवौ, कै लराई सनमुख लेवौ, वस न हमारौ, भूप आज्ञा आये धाय कै॥ बोले "नेकु रहौ, मैं अन्हाय पकराय देत," हेत मन और, जल डार्‌यो लै, दिखाय कै। "वस्तु है तिहारी प्रभु, लीजियै," उचारी यह; बानी लागी प्यारी, उर धारी सुख पाय कै॥ ४६२॥ (६२९–४६२ = १६७)

वार्त्तिक तिलक।

इसके अनंतर, श्रीअंगद जी हीरा लेकर नीलाचल धाम को चले कि "श्रीजगन्नाथ जी को पहिराय ही आऊं"। इतने में राजा के भेजे बहुत से शस्त्रधारी लोग आके आपको चारों ओर से घेर के कहने लगे कि "अब हीरा धर दीजिये, और नहीं तो सन्मुख युद्ध कीजिये; इसमें हमारा कुछ बस नहीं, हमने तो राजा की आज्ञा से धावा किया है"। आपने कहा कि "एक क्षण भर क्षमा करौ, मैं स्नान कर के तुम को दिये देता हूं"।

मन में तो आपके और ही था, हीरा ले, सब को दिखा, उसी सर (तालाव) में डाल कर, पुकार उठे कि "हे प्रभो! यह आप की वस्तु है, सो लीजिये"। भक्त

की वाणी श्रीजगन्नाथ जी को अति प्यारी लगी, इस से सात सौ कोस से हाथ बढ़ा हीरा ऊपर से ऊपर लोक लिया और आपने श्री अंग में धारण कर लिया; सो आज तक श्री-अंग में सुशोभित है।

(५७६) टीका। कवित्त (८४३-५७६ = २६७)

एतौ घर आये, वे तौ जलमधि कूदि छाये, अति अकुलाये, नेकु खोज हूं न पायौ है। राजा चलि आयौ, सब नीर कढ़वायौ, कीच देखि, मुरझायौ, दुख सागर अन्हायौ है॥ जगन्नाथ देव आज्ञा दई, वाहि सुधि देवौ, आयकै सुनाई, नर तन बिसरायौ है॥ गयौ, जाय देख्यौ उर पर जग मग रह्यौ, लह्यौ सुख नयननि कौ, कापै जात गायौ है॥ ४६३॥ (६२९-४६३ = १६६)

वार्तिक तिलक।

श्रीअंगद जी तो अपने घर चले आए, और राजा के सब लोग जल में कूद पड़े; अकुला के ढूंढने लगे परन्तु हीरा का खोज नहीं ही पाया। तब बहुत से लोग साथ ले राजा स्वयं आया; तालाब को काट उसने जल निकलवाया, कितनाही ढुंढवाया पर वह केवल कीच मात्र देख, मुरझा कर दुःखसिंधु में डूब गया!

श्रीजगन्नाथ देव जी ने अपने जनों को आज्ञा दी कि "जाओ अंगद भक्त से समाचार कहि आओ कि तुम्हारा अर्पण किया हुआ हीरा प्रभु ने अपने श्रीअंग में धारण कर लिया"। सुनके आप ने आनन्द से तन का भान

भुला दिया; फिर श्री पुरुषोत्तम पुरी में जाकर श्रीअंगद जी ने देखा कि "हीरा प्रभु के श्रीअंग पर जगमगा रहा है"।

उस समय श्रीअंगद जी को जो नेत्रानन्द हुवा सो कौन कह सकता है?

(५७७) टीका । कवित्त (८४३-५७७=२६६)

राजा हिय ताप भयौ, दयौ अन्न त्यागि, कह्यौ आवै जोपै, भाग मेरे, ब्राह्मन पठाये हैं। धरनौ दै रहे कहे नृप के वचन सब, तब ह्वै दयाल आप पुर ढिग आये हैं॥ भूप सुनि आगे आय पाय लपटाय गयौ लयौ उर लाय दृग नीर लै भिजाये हैं। राजा सरवसु दियौ जियौ हरि भक्ति कियौ हियौ सरसायो गुन जाने जिते गाये हैं॥ ४६४॥ (६२९-४६४ = १६५)

वार्तिक तिलक ।

जब आप जाके श्रीजगन्नाथपुरी ही में रह गये, तब आप का प्रभाव समझ राजा के हृदय में बड़ा पश्चात्ताप हुआ, अन्न त्याग दिया; ब्राह्मणों को बुला बहुत सत्कार कर कहा "आप लोग जाइये किसी यत्न से चाचा जी को लिवा लाइये, तौ मेरे बड़े भाग्य उदय हों;" जाके ब्राह्मणों ने आप से राजा की सब प्रार्थना सुनाई, और धरना दे उपवास किया। तब आप दयालु होकर आये। राजा ने सुना कि पुर के पास आप आ पहुँचे, तब वह सजलनेत्र आगे आकर सप्रेम चरणों में लपट गया, आपने हृदय में लगा लिया, परस्पर प्रेमाश्रुपात से भिंगो दिये। राजा ने आपको सर्वस्व

अर्पण कर जीवन पर्य्यन्त सरस हृदय से हरिभक्ति की। सन्त का आश्रित होकर किसने कल्याण नहीं पाया? श्रीअंगद भक्त जी के जितने गुण हम जानते थे उतने गान किये हैं॥

ये कलियुग के श्रीअङ्गद जी हुए।

श्रीचतुर्भुज जी।

(५७७) मूल। छप्पय (८४३–५७८=२६५)

चतुर्भुज नृपति की भक्ति कौ कौन भूप सर-वर करै॥ भक्त आगमन सुनत सनमुख जोजन इक जाई। सदन आनि सतकार सदृश गोविन्द बड़ाई॥ पाद प्रछालन सुहथ राय रानी मन सांचें। धूप दीप नैवेद्य बहुरि तिन आगें नाचें॥ यह रीति करौलाधीस की तन मन धन आगें धरै। चतुर्भुज नृपति की भक्ति कौ कौन भूप सर वर करै॥ ११४॥ (२१४–११४=१००)

वार्त्तिक तिलक।

"करौली" के राजा श्रीचतुर्भुज जी की लोकोत्तर भक्ति की समता, कौन राजा कर सकता है? चार कोस पर श्रीहरि भक्त का आगमन सुन सन्मुख जाके घर लिवा लाते और भगवान के समान सत्कार बड़ाई कर, सच्चे मन से, अपने हाथों से राजा रानी दोनों, चरण धो, चन्दन फूल माला धूप दीप नैवेद्य से पूजा आरती कर, फिर हरिभक्त के

आगे स्वयं नृत्य कीर्त्तन करते, और तन मन धन सब आगे रख अर्पण करते थे। भक्तराज करौली के अधीश की इस प्रकार की रीति थी, दूसरे किस नृपति की उपमा इसकी कही जा सकती है ?

एक चतुर्भुज दास श्रीविट्ठलनाथ जी के शिष्य, कृष्णदास जी के सप्तम पुत्र, बड़े सुकवि थे; व एक चतुर्भुज मिश्र भाषा दसमस्कन्ध श्रीमद्भागवत के कर्ता थे और एक चतुर्भुज श्रीवैष्णव दास जी को कहते हैं जिनकी कविता वल्लभीया मन्दिरों में गाई भी जाती है श्रीहरिवंश जी के शिष्य ॥

(५७९) टीका । कवित्त (८४३–५७९ = २६४)

पुर ढिग चारौ ओर चौकी राखी जोजन पै, जो जन ही आवै तिन्हैं ल्यावत लिवाय कै। मालाधारी दास मानि, आवै कोऊ द्वार जौ पै, करै वही रीति सो सुनाई छप्पै गाय कै॥ सुनी एक भूप भक्त निपट अनूप कथा, सब कों भंडार खोलि देत, बोल्यौ धाय कै। "पात्र औ अपात्र यों बिचार ही जौ नाहीं, तौ पै कहा ऐसी बात ?" दई नेकु मै उड़ाय कै॥ ४६५ ॥ (६२९–४६५ = १६४)

वार्तिक तिलक ।

राजा श्रीचतुर्भुज जी ने अपने पुर के चारों ओर चार चार कोस पर चौकी बैठा रक्खी थी कि "जो (भगवज्जन) कण्ठी तिलक धारण किये आते थे उनको वहां ही सत्कार पूर्वक लोग रखते थे; तब राजा आप स्वयं जाके वहां से उनको सादर घर लिवा लाते थे ।

जो कोई माला तिलक धारण कर आवै, उसको जैसा

कि छप्पय में श्रीनाभा स्वामी ने कहा है उसी रीति से पूजा सत्कार किया करते थे।

इस प्रकार आपकी अनूप कथा एक दूसरे राजा ने सुनी कि "कोई तिलकधारी जाय उसको अपना धनगृह (कोष) खोल देते हैं"। उसने कहा कि "जब उन को पात्रापात्र का विचार ही नहीं है, तब क्या भक्ति करते हैं? किसी काम की बात नहीं कुछ योग्य बात नहीं"। इस प्रकार, बात की बात में उसने उस प्रशंसा को चुटकियों में उड़ा दिया॥

(५८०) टीका। कबित्त (८४३–५८० = २६३)

भागवत गावै, भक्त भूप एक विप्र तहां, बोलिकै सुनावै "ऐसी मन जिन ल्याइयै। पावै आसै कौन हृदै भौन मै प्रवेश करि? भरि अनुराग कहा उर मधि आइयै?"॥ करी लै परीक्षा भाट विमुख पठाय दियौ, दियौ भाल तिलक द्वार दास यों सुनाइयै"। गयौ, गयौ भूलि, फूलि कुल विस्तार कियौ लियौ पहिचानि अन्न जान कैसें पाइयै॥ ४६५॥ (६२९–४६५ = १६४)

वार्तिक तिलक।

उस राजा के यहां एक भक्तराज ब्राह्मण जी भागवत सुनाते थे; उनने राजा के बचन सुनकर कहा कि "ऐसा मन में मत लाइये कि 'उनको पात्र और अपात्र का विवेक नहीं है, न जानें वे अपने हृदय में क्या भाव लाकर इस प्रकार अनुराग में भरके सर्वस्व अर्पण करते हैं; ऐसी किसी की शक्ति नहीं है कि भक्तों के हृदय में प्रवेश कर

उनके मन की आशय जान लेवे "। श्री भक्तवर पंडित जी के ऐसे वचन सुन, परीक्षा के लिये, एक विमुख भाट को तिलक माला धारण करा के उस राजा ने आपके पास भेजा, और कह दिया कि "वहां जा, ऐसा ही वेष बना, अपने को 'भगवतदास' कहना।"

भाट गया तो परंतु तिलक कंठी धारण करना और अपने तईं वैष्णव बताना तो वह भूल ही गया; अपने अभ्यास से फूलके वंश विस्तार प्रशंसा करने लगा। लोगों ने जाना कि यह तो भाट है; फिर अब भीतर कैसे जाने पाता ?

(५८१) टीका । कवित्त (८४३–५८१ = २६२)

बीते दिन बीस तीस, आई वह सीख सुधि, कही "हरिदास' कोऊ आयौ, यों सुनाइयै। बोले "जू निसंक जावो, गावौ गुन गोविन्द के, आये घर मध्य, भूप करी जैसी भाइयै॥ भक्ति के प्रसंग कौन रंग कहूं नैकु जान्यौ, जान्यौ उन मान सों परीक्षा मँगवाइयै। दियौ ले भंडार खोलि, लियौ मन मान्यौ, दई संपुट में कौड़ी डारि, जरी लपटाइयै॥ ४६६॥ (६२९–४६६ = १६३)

"जरी" = زری = स्वर्ण सूत्र का वस्त्र गोटा।

वार्तिक तिलक।

उस भाट को कोई एक महीना भर बीत गया पर अब अपने राजा की शिक्षा की सुधि आई; तब वेष बना उसने द्वारपाल बेतपानि से कहा कि "'एक भगवतदास आये हैं'

ऐसा जा सुनाइये "। लोगों ने कहा " आपके लिये डेवढ़ी नहीं आप निःशंक जाके श्रीगोबिन्द के गुन गाइये "। वह गृह में गया; श्रीचतुर्भुज जी ने भक्त वेष देख वैसी ही पूजा की।

परंतु उस भाटके मन वचन में भक्ति प्रसंग के रंग का लेश भी नहीं पाया, सो राजा ने श्रीहरिकृपा से समझ लिया कि 'किसी ने मेरी परीक्षा लेने के लिये भेजा है'। राजा ने अपना द्रव्यगार (भंडार) खोल दिया, भाट ने मन मानी सम्पत्ति ली। तब, श्रीचतुर्भुज जी ने एक कौड़ी स्वर्णसूत्र के पट में लपेट, एक उत्तम सम्पुट में रख, पीछे से यह भी भाट को दे दिया॥

(५८२) टीका। कवित्त (८४३-५८२ = २६१)

आयौ वाही राजा पास, सभा मै प्रकाश कियौ, लियौ धन दियौ, पाछे सोई लै दिखायौ है। खोलि कै लपेटा मध्य संपुट निहारि कौड़ी, समुझि बिचारै हारै मन मै न आयौ है॥ बड़ौ भागवत बिप्र पंडित प्रवीन महा, निसि रस लीन जानि आयकै बतायो है। कर्‍यौ उनमांनि, भक्त मानिबौ प्रधान जरी मूंदिकै पठाई, ताहि गुण समझायौ है॥ ४६८॥ (६२९-४६८ = १६१)

वार्तिक तिलक।

वह अपने राजा के पास आ, सब वृत्तांत सादर सुना, जो धन लाया था सो, और पीछे जो राजा ने डब्बा दिया सो भी, उस भाट ने आगे रख दिया। राजा ने सम्पुट खोला तो उसमें गोटे से लपेटी एक कौड़ी देखी! लाख प्रकार से

बिचारके हार गया परंतु उसका तात्पर्य्य इसकी समझ में नहीं ही आया। तब उसने अपने उन ब्राह्मण पंडित जी बड़े भागवत महा प्रवीन हरि रस लीन से रात्रि में इसका गूढ़ार्थ तथा तात्पर्य्य पूछा। सब वृत्तान्त सुन कानी कौड़ी आदिक देख, तात्पर्य्य को समझ बिचार कर, प्रसन्न हो विप्र भागवत जी ने राजा से, आज्ञान अंधकार में लीन जानके, बताया कि "देखिये! श्रीचतुर्भुज जी ने ऐसा अनुमान किया है कि यह फूटी कौड़ी सरीखा भक्ति गुण हीन मनुष्य बहुमूल्य स्वर्णपट संपुट सरीखे भागवत वेष से आच्छादित आया है; सो उसी वेष को प्रधान मान, हमने पूजन सत्कार किया है"।

(५८३) टीका। कवित्त (८४३-५८३ = २६०)

राजा रीझि पाव गहे, कहे "जू वचन नीके ऐपै नैकु आप जाय तत्तु याको ल्याइयै"। आये, दौरि पाय लपटाय भूप भाय भरे, परे प्रेम सागर में, चरचा चलाइयै॥ चलिवे न देत, सुख देत चले लोलमन, खोलिकै भंडार दियौ लियौ न रिझाइयै। उभै सुवा सारौ कही एक कर धारौ मेरे दई अकुलाय लई मानौ निधि पाइयै॥४६९॥ (६२९–४६९ = १६०)

वार्तिक तिलक।

राजा सुन, लज्जित और अति प्रसन्न हो, पंडित जी के चरण पकड़ कहने लगा कि "आपने बहुत अच्छे वचन कहे; परंतु आप चतुर्भुज जी के यहां तनक जाके इस का यथार्थ आशय लाइये"। पंडित जी सहर्ष करौली आये, भक्तराज ने दौड़कर चरणों में लिपट, बड़े भाव से पूजन किया। दोनों

भक्तों ने प्रेमसागर में मग्न हरि चर्चा चला, परस्पर सुख लिया।

कुछ दिन रह पंडित चलना चाहते; राजा अनेक सत्संग सुख दे नहीं जाने देते। अन्त को चले, तो दोनों भक्तों के मन बियोग से चंचल हो गये। राजा ने अपना कोश (धनगृह) खोल दिया कि "जो चाहिये लीजे"। पर श्रीपंडित जी ने कुछ भी न लिया। कहा कि "मैने, आपकी भक्ति ही देख अति प्रसन्न हो, परम लाभ पाया; ये जो आपके शुक और सारिका हैं, इन दोनों में से एक मुझे दीजिये"। वे दोनों पक्षी प्रभु का नाम सुनानेवाले, राजा को बड़े ही प्रिय थे; इससे अकुला के एक (सारिका) को दिया। ब्राह्मण ने उसे निधि के समान सानन्द लिया।

(५८९) टीका। कवित्त (८४३–५५८ = २५९)

आयौ राजसभा, बहु बातनि अखारौ जहां, बोलि उठी सारौ "कृष्ण कहौ," झारि डारे हैं। पूछैं नृप "कहौ," "अहो! लहौ सब याही सों जू, पच्छी वा समाज रहै हरि प्रान प्यारे हैं॥ कोटि कोटि रसना वखानौं पै न पाऊं पार;" सार सुनि भक्ति, आय सीस पाव धारे हैं। "राखौ यह खग, पगि रह्यौ तन मन श्याम," अति अभिराम रीति मिले औ पधारे हैं॥ ४७०॥ (६२९–४७० = १५९)

वार्तिक तिलक।

श्रीभक्त पंडित जी उस सारिका को लेकर राजा की सभा में आये; वहां लोग अनेक सांसारिक वार्ता करते थे;

सो सुन, वह मैना बोली " श्रीरामकृष्ण गोविन्द हरे कह; (जिस से संसार सागर पार हो, और वार्ता करने से यम यातना के भागी होमे)–" राजा ने पंडित जी से पूछा कि " चतुर्भुज जी के प्रेम भाव की वार्ता कहिये " ।

पंडित जी ने उत्तर दिया कि " आपको इसका पूछना ही क्या है ? इसी मैना के उपदेश से तो सब कुछ जान जाइये कि यह चिड़ी (पक्षी) उस समाज में रहती है, जब इस को श्रीहरि ही प्राण प्रिय हैं; तब उन राजा की क्या कहूं ? मैं कोटिन रसना से भी यदि उनकी भक्ति का बखान करूं, तो भी पार नहीं पासकता " ।

इस प्रकार प्रेम सारांश भक्ति युक्त वार्ता सुन, स्वयं श्री चतुर्भुज जी के यहां आकर राजा ने चरणों में प्रणाम किया, और वह सारिका देकर कहा " इस खग को आप ही राखिये यह तन मन से श्यामसुन्दर में पग रहा है " । अति अभिराम रीति से कुछ दिन श्रीचतुर्भुज जी का संग कर फिर मिल मिला के अपने गृह आकर भगवद्भक्ति में तत्पर हो वह राजा भी कृतार्थ हुआ ॥

श्रीमीराबाई जी ।

(५८५) मूल । छप्पय (८४३–५८५ = २५८)

लोक लाज कुल-शृंखला तजि "मीरा" गिरि-धर भजी ॥ सदृश गोपिका प्रेम प्रगट, कलि-जुगहिं दिखायो । निरअंकुश अति निडर, रसिक

जस रसना गायौ ॥ दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ । बार न बांको भयौ, गरल अमृत ज्यौं पीयौ ॥ भक्ति निसान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी । लोक लाज कुल-शृंखला तजि "मीरा" गिरिधर भजी ॥ ११५ ॥ (२१४-११५=९९) पाठान्तर " मीराँ " ।

वार्तिक तिलक ।

श्रीमीरा जी ने, भक्ति बाधक लोक लाज और कुलरीति की शृंखला (बेड़ी) को तोड़ कर, श्री गिरिधरलाल जी का भजन किया । श्री गोपी जनों के समान प्रगट प्रेम कठिन कराल कलिकाल में दिखाया; और प्रेम प्रमत्त दशा से निरंकुश तथा निडर होकर रसना से रसिक शिरोमणि लाल का यश गान किया । आपकी यह प्रेमगुणयुक्त भक्तिरीति देख, दोष बिचार कर दुष्टों ने मृत्यु का उद्यम कर बिष दिया; सो आपने महाविष को अमृत के समान पान कर लिया, और आपका एक बाल भी न टेढ़ा हुआ ।

भक्ति रूपी दुंदुभी बजाकर किसी से लजानी नहीं । इस प्रकार श्रीमीराबाई जी ने श्रीगिरिधरलाल का भजन किया ॥

दोहा—" लाज छाड़ि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल कानि ।
सोई मीरा जग बिदित, प्रगट भक्ति की खानि ॥ १ ॥
नृत्यति नूपुर बांधिकै, नाचत लै करतार ।
विमल हियो भक्तनि मिली, तृण सम गनि संसार" ॥ २ ॥

"बन्धुनि विष ताको दियौ, करि विचार चित आन।
सो विष फिरि अमृत भयौ, तब लागे पछतान ॥ ३ ॥
ललिता हू लइ बोलिकै, तासों हो अति हेत।
आनँद सों निरखत फिरै, वृन्दाबन रसखेत" ॥ ४ ॥
(श्री ध्रुवदास जी)

(५८६) टीका। कवित्त (८४३–५८६=२५७)

"मेरतौ" जनम भूमि, झूमि हित नैन लगे, पगे गिरधारी लाल, पिता ही के धाम मै। राना कै सगाई भई, करी व्याह सामानई, गई मति बूड़ि, वा रँगीले घन-श्याम मै ॥ भाँवरै परत, मन साँवरे सरूप मांझ, तांवरैसी आवै, चलिवे कौ पति ग्राम मैं। पूछैं पित मात "पट आभरन लीजियै जू" लोचन भरत नीर कहा काम दाम मै ॥ ४७१ ॥ (६२९–४७१ = १५८)

वार्तिक तिलक।

परम भक्तिवती रूपवती श्री १०८ मीराबाई जी की जन्म-भूमि जोधपुर राज्यान्तर्गत "मेरते" में थी; वहां के राव रत्नसेन की कन्या और जयमल जी की बहिन थीं। प्रेम से झूमकर आपके नयन श्रीगिरिधरलाल में लग के, पिता ही के गृह में पग गये; अर्थात् एक समय राजगृह के समीप किसी श्रीमान के गृह में दूल्हे को खिड़की से देख पांच वर्ष की मीरा जी गिरधारी लाल के मंदिर में अपनी माता के पास आकर पूछने लगीं कि "मेरा दूल्हा कहां है?" माता ने हँसकर श्रीगिरिधर लाल को बता दिया

कि " यही हैं "। उसी क्षण से आपकी आंखें श्रीलाल जी के प्रेम में रँग गईं; हृदय में अनुराग और अपनपौ हो गया।

फिर जब योग्य अवस्था हुई तब चित्तौर (मेवाड़) के राना सांगा के पुत्र भोजराज से सगाई हुई। विवाह की सामग्री पिता ने नवीन की परन्तु आपकी मति तो उस रँगीले श्यामसुन्दर में डूब गई थी; इससे भाँवरी पड़ने लगी उस क्षण आपका मन श्याम स्वरूप ही में मग्न था

" मीरा, प्रभु गिरिधारिलाल सों करी सगाई हाल।"

विवाह के अनंतर पति के ग्राम में चलने के समय आपको मूर्छासी आ गई।

माता पिता कहने लगे " बेटी! पट वस्त्र भूषण जो तुझ को लगे सो सब लो, दुखित मत हो "। आपने नेत्रों में जल भर कर कहा " मुझे धन भूषण तो कुछ भी नहीं चाहिये, परन्तु—"।

" देरी माई! अब म्हाकों गिरिधर लाल "।

(५८७) टीका। कवित्त (८४३–५८७ = २५६)

देवौ गिरधारीलाल, जौ निहाल कियौ चाहौ, " और धन माल सब राखिये उठाय कै। बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ़यौ भारी, रोय मिली महतारी, कही " लीजियै लड़ाय कै "॥ डोला पधराय, दृग दृग सो लगाय चली, सुख न समाय चाय, प्रानपति पायकै। पहुंची भवन सासु देवी पै गवन कियौ तिया अरु वर गठ जोरो कर्‌यौ भाय कै॥४७२॥ (६२९–४७२ = १५७)

" माल " = مال = धन धान्य।

वार्तिक तिलक।

"जो मुझे प्रसन्न किया चाहौ, तो श्रीगिरिधारीलाल जी को दो, और धन भूषण वसन सब अपना रख छोड़ो"। आप माता को अति प्यारी थीं, उसने देखा कि पुत्री को प्रभु के प्रीति का रंग भारी चढ़ा है इससे रो कर हृदय में लगा कर कहा कि "बेटी! श्रीगिरिधरलाल जी को ले परम प्रेम से पूजा सेवा करना"।

तब आप अपनी पालकी में पधरा के सामने आप भी नेत्रों को प्रभु के नेत्रों से मिला कर बैठ गईं। और चलीं; अपने प्राणप्रिय प्राणनाथ गिरिधरगोपाल के पाने का आनन्द इतना था कि हृदय में नहीं समाता था। जो छवि दृष्टि गोचर होती थी वह श्रीमीरा जी ही से पूछना चाहिये, दूसरा क्या जानै?

राना के घर पहुंचीं; सासु उतार कर स्त्री पुरुष (अपने पुत्र) का गठ जोड़कर, देवी के गृह में लिवा गई॥

(५८८) टीका। कवित्त (८४३-५८८=२५५)

देवी के पुजायवेकौं, कियौ लै उपाय सासु, बर पै पुजाइ, पुनि वधू पूजि भाषियै। बोली "जू बिकायो माथौ लाल गिरिधारी हाथ, और कौन नवै, एक वही अभिलाखियै"॥ "बढ़त सुहाग याकें पूजें तातें पूजा करौ करौ जिनि हठ सीस पायनि पै राखियै"॥ कही बार बार "तुम यही निरधार जानौ वही सुकुँवार जा पै वारि फेरि नाखियै" ॥ ४७३॥ (६२९-४७३=१५६)

मीराजी की सासु ने, देवी की पूजा का उपाय कर वर (अपने पुत्र) से पुजवा के फिर, आपको आज्ञा की कि "बहू! तुम भी देवी की पूजा करो, प्रणाम करो"। आप ने उत्तर दिया कि मेरा माथा तो श्रीगिरिधरलाल जी के हाथ बिक चुका है औरके सामने अब नहीं झुकता, केवल उन्हीं के प्रणाम की अभिलाषा युक्त रहता है"। फिर सासु कहने लगी कि "देवीजी की पूजा करने से भाग सुहाग बढ़ता है, इस्से हठ मत करो, पूजा करके चरणों में सीस रक्खो"।

आप बोलीं कि मैं बारंबार कहती हूं, आप यही निश्चय जानिये, और को कदापि सीस नहीं नवाऊंगी, केवल उन्हीं श्यामसुकुमार को मस्तक नवाऊंगी कि जिनके ऊपर तन मन शीश सब निवछावर करके फेंक दे चुकी हूं; आप व्यर्थ हठ मत कीजिये"।

(सवैया) पल काटौ सही इन नैनन के गिरधारी बिना पल अंत निहारैं। जीभ कटैं न भजै नँदनंदन, बुद्धि कटै हरिनाम बिसारै॥ "मीरा" कहै जरिजाहु हियौ पद्कंज बिना पल अन्तर धारै। सीस नवै ब्रजराज बिना वह सीसहिं काटि कुवां किन डारै"॥

(५८९) टीका। कवित्त (८४३-५८९=२५४)

तब तो खिसानी भई, अति जरि बरि, गई गई पति पास "यह वधू नहीं काम की। अबही जवाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ, आगे क्यों प्रमान करै"? भरै स्वास चाम की राना सुनि कोप कस्यौ, धस्यौ हिये मारिबोई, दई ठौर न्यारी, देखि रीझीमति वामकी। लालनि लड़ावै गुण गाय

के मल्हावै, साधु संग ही सुहावै, जिन्हैं लागी चाह स्याम की ॥ (४७४ ॥ ६२९--४७४ = १५५) "

" जवाब" = جواب = उत्तर ।

वार्तिक तिलक ।

श्रीमीरा जी का उत्तर सुन, सास अति क्रोधित हो, जर बर के, अपने पति के पास जाकर कहने लगी कि " यह बहू तो कुछ काम की नहीं है, अभी उसने मुझे उत्तर दिया और अपमान किया, तब आगे मेरे वचनों का क्या प्रमाण करैगी ? " ऐसा कह लोहार की भाथी सरीखा स्वांस भरने लगी। रानी की बात सुनकर, राना ने, वैष्णव शाक्त भेद विरोध प्रभाव, तथा रजोगुण तमोगुण सुभाव से, अति क्रोधित हो, श्रीमीरा जी को मार ही डालना निश्चय कर, अपने अंतःपुर से न्यारा एक गृह आप के रहने को देदिया। आप एकांत देख बड़ी प्रसन्न हुईं; अपने गिरिधरलाल को अष्टयाम लाड़ लड़ाती अति प्यार से सेवा पूजा भजन गुन गान किया करतीं और श्री श्यामसुन्दर के सनेही संतों का संग छोड़ और कुछ आपको अच्छा नहीं लगता था ॥

(मीराजी के लौकिक पति, राना के कुमार, ने दूसरा बिबाह कर लिया और इस संसार से भी चलदिया । श्रीमीरा जी पावों में नूपुर बांध श्रीगिरिधर जी के सन्मुख अपने पद गाया और नाचा करतीं । साधुओं की सेवा सत्कार भी भली भांति से करतीं । माता पिता के दिये धन की त्रुटि तो थीही नहीं ॥

(५९०) टीका। कवित्त (८४३—५९० = २५३)

आय कै ननँद कहै "गहै किन चेत भाभी! साधुनि सो हेतु मै कलंक लागै भारियै। राना देसपती लाजै; बाप कुल रती जात, मानि लीजै बात बेगि संग निरवारियै"॥ "लागे प्रान साथ संत, पावत अनंत सुख, जाको दुख होय, ताको नीके करि टारियै। सुनिकै, कटोरा भरि गरल पठाय दियौ, लियौ करि पान रँग चढ्यो यों निहारियै॥ ४७५॥ (६२९–४७५ = १५४)

वार्त्तिक तिलक।

मीराजी का भजन साधु संग देख एक दिन राना की कन्या (ऊदाबाई) आके शिक्षा करने लगी कि "भाभी! (भावज) तुम चेत नहीं करती हो, साधुओं से प्रेम करने से बड़ा भारी कलंक लगता है; तुम्हारी रीति देख देश-पति राना लज्जित होता है; तुम्हारे पिता के कुल की भी मर्य्याद जाती (नष्ट होती) है; मेरी बात मानकर अभी अभी बैरागियों का संग छोड़ दो"। वह समझाकर हार थकी पर आपने उत्तर दिया कि "मैं संतों के संग से अनंत सुख पाती हूं, इस से संत लोग मेरे प्राणों के साथ हैं; जिसको लाज और दुख हो, उसको तुम छुड़ाओ अथवा जिसको दुख लगे सो मेरे पास न आवै।"

निदान, इस वार्ता को जब राना ने सुना, तब एक कटोरा भर महाविष तुलसी छोड़ "चरणामृत" कहकर भेज दिया। आपने सीस चढ़ा प्रसन्नता पूर्वक पान कर-

लिया। कुछ व्यतिक्रम होने की तौ बात ही क्या? बरंच आपके हृदय में प्रेम रंग की प्रभा चढ़गई और मुख की छबि अत्यन्त बढ़ गई॥

उस समय जो पद गाया था उसकी पहिली कड़ी यह है:—"राना जी जहर दियो, हम जानी।"

(५९१) टीका। कबित्त (८४३–५९१=२५२)

गरल पठायौ, सो तौ सीस लै चढ़ायौ, संग त्याग बिष भारी, ताकी झार न सँभारी है। राना नै लगायौ चर, बैठै साधु ढिग ढर, तबही खबर कर; मारौ यहै धारी है॥ राजैं गिरिधारी लाल, तिनहीं सों रंग जाल, बोलत हँसत ख्याल, कानपरी प्यारी है। जाय कै सुनाई, भई अति चपलाई, आयौ लिये तरवार, दै किवार, खोलि न्यारी है॥ ४७६॥ (६२९--४७६--१५३)

वार्तिक तिलक।

श्रीमीरा जी को राना ने विष भेजा सो तो शीस पर चढ़ा कर पान कर ही गई, परंतु संतों का संग त्याग रूपी महाबिष की झार भी न सह सकीं; जब बिष से आप नहीं मरीं, तब राना ने कई प्रतिहारों (चारों) से कहा कि "तुम यह मर्म लो जब वह किसी वैरागी के साथ एकांत बैठी हो तब शीघ्र आकर समाचार कहो, उसी क्षण मैं आकर उसको मार डालूंगा"।

एक समय श्रीमीरा जी श्रीगिरधरलाल जी के साथ एकांत में रस रंग भरी वार्ता करती हँसती हुई चौपड़

खेलती थीं, बातचीत को सुनकर जाके चर ने राना से कहा कि "इस समय मीरा किसी से हँसी वार्ता कर रही है"। राना खड्ग लेकर अति चपलता से आया, और बोला कि "खोल किवाड़!" आपने तत्काल ही किवाड़ खोल दिये॥

(५९२) टीका। कवित्त (८४३-५९२=२५१)

"जाके संग रंग भीजि, करत प्रसंग नाना, कहाँ वह नर गयौ, बेगि दै बताइयै"। आगे ही बिराजै, कछू तोसों नहीं लाजै, अभूं देखि सुख साजै, आखैं खोलि दरसाइयै"॥ भयौई खिसानौ राना, लिख्यौ चित्र भीत मानो, उलटि पयानौ कियौ, नैकु मन आइयै। देख्यौ हू प्रभाव ऐपै भाव मै न भिद्यौ जाइ, बिना हरि कृपा कहौ कैसे करि पाइयै॥ ४७७॥ (६२९-४७७ = १५२)

वार्तिक तिलक।

राना मीराजी के साथ किसी मनुष्य को न देख पूछने लगा कि "तू जिसके संग रंग भींज के अनेक प्रेम प्रसंग करती रही, सो मनुष्य कहां गया? शीघ्र बता;" आपने उत्तर दिया कि वे पुरुष तुम्हारे आगे ही विराजमान हैं, कुछ तुम से लजाने वाले नहीं; नेत्र खोल देखो, अब भी सब सुख साजते हैं।"

राना ने देखा तो श्रीगिरधर जी के हाथ में पासे हैं जो कि चौपड़ में डालने को लिये थे। तब अति लज्जित हुआ, मानों चित्र का लिखा है। लौटके अपनासा मुँह

लिये चला आया, कुछ मन में बिस्मित हुआ, पर प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर भी प्रीतिभाव कुछ मन में नहीं पैठा; पैठे कैसे ? बिना प्रभु तथा हरि भक्तों की कृपा के भक्ति भाव कोई कैसे पा सकता है ?

(५९३) टीका। कवित्त (८४३–५९३ =२५०)

बिषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ, कियौ यों प्रसंग "मोंसों अंग संग कीजियै। आज्ञा मोकों दई आप लाल गिरिधारी;" "अहो सीस धरि लई, करि भोजन हू लीजियै"॥ संतनि समाज मै बिछाय सेज बोलि लियौ, "संक अब कौन की निसंक रस भीजियै"॥ सेत मुख भयौ, बिषैभाव सब गयौ, नयौ पायन पै आय, "मोकों भक्ति दान दीजियै।"॥ ४७८॥ (६२९–४७८ = १५१)

वार्तिक तिलक।

एक दिन की विचित्र वार्त्ता सुनिये, एक कुटिल विषई पापी दुष्ट साधुका भेष धारण किये हुए आके आप से बोला कि "मुझे गिरधरलाल ने स्वयं आज्ञा दी है कि "तुम जाके मीरा को पुरुष संग का सुख दो," सो तुम मुझसे अंग संग करो"। श्रीमीरा जी ने उत्तर दिया कि "आज्ञा मेरे सीस पर है, प्रथम आप प्रसाद भोजन तो कर लीजिये, मैं सेवा को उपस्थित हूं।"

आप संतों के समाज के मध्य में सेज बिछवाकर उस बिषई से बोलीं कि "आप इस पर्यंक पर सुख पूर्व्वक बिराजिये और मुझे जो आज्ञा हो;" जब प्रभु की आज्ञा है ही

तो अब किस की शंका है? आइये निशंक रस रंग में डूब के अंग संग कीजिये।

श्रीमीरा जी के वचन सुन उसका मुख फीका पड़गया; बिषैभाव तज, आपके चरणों में पड़ गिड़गिड़ाने और कहने लगा कि "मुझे अब हरि भक्ति दान दीजिये"। आपने कृपादृष्टि से देख, उस को हरि सन्मुख करदिया॥ सन्तों की मण्डली को श्रीमीरा जी के इस आचरण और चरित्र से बड़ा ही हर्ष प्राप्त हुआ; और आपका यश चारों ओर बहुत फैल गया॥ आप के हृदय में भक्ति प्रवाह के साथ रसमयी कविता की श्रोता भी आ मिली॥

राणा ने आप के मार डालने के लिये सर्प आदि प्रयोग भी किये पर न आप मरीं ही, और न राणा की आँखें ही खुलीं॥

(५९४) टीका। कवित्त (८४३–५९४=२४९)

रूप की निकाई भूप "अकबर" भाई हिये, लिये संग तान-सेन देखिबेकों आयो है। निरख निहाल भयौ, छबि गिरधारी लाल, पद सुखजाल एक, तबही चढ़ायो है॥ वृन्दावन आई, जीव गुसांई जू सों मिलि झिली, तिया मुख देखिबे को पन लै छुटायौ है। देखी कुंज कुंजलाल प्यारी सुख पुंज भरी धरी उर मांझ, आय देस, वन गायौ है॥ ४७९॥ (६२९–४७९=१५०)

वार्तिक तिलक।

अद्भुत प्रेम और आप के रूप की सुन्दरता सुनके अकबर बादशाह के मन में प्रिय लगी; सो एक दिन

वह अपना ऐश्वर्य्य छिपाके तानसेन गायक के साथ आप के दरशन को आया। श्रीगिरिधर लाल के सहित मीराबाई का सुन्दर रूप और भक्ति देख कृतार्थ हुआ। उसी समय तानसेन ने एक नवीन पद रच गाके आपको अर्पण किया। फिर आप की भक्ति की प्रशंसा करते दोनों चले गए।

धाम प्रेम से वृन्दावन आईं। "मीरा प्रभु गिरिधर के कारण जग उपहास सहौंगी"।

प्रशंसा सुन, एक दिन आप श्रीजीव गुसाईं जी के मिलने को गईं, गुसाईं जी ने कहला भेजा कि "मैं स्त्री का मुख नहीं देखता;" श्रीमीरा जी नें उत्तर दिला भेजा कि "मैं तो आज तक पुरुष एक श्रीगिरिधर लाल जी ही को जानती थी और सब जीव मात्र को स्त्री सम समझती थी, परंतु जीवगुसाईं जी दूसरे पुरुष वृन्दावन में बने हुए बैठे हैं कि स्त्री का मुख नहीं देखते"।

इस प्रकार उत्तर सुन गुसाईं जी स्वयं चलके अपना पन छोड़, आप के दरसन किये॥ दोनों भक्तों ने प्रेम से मिल झिलके परस्पर दरसन संभाषण सुख लिये; फिर, सबा वृन्दावन के कुंज कुंजन प्रति सुख पुंज राधाकृष्ण जी का दरसन कर शोभा हृदय में धर, देश में आ, जो वृन्दावन में देख आई थी, सो अपना अनुभव सब सप्रेम पदों से गान किये॥

राणा के हां की उत्पीड़न और उपद्रव से उदासीन हो,

गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी की सम्मति पा द्वारका आईं।

(५९५) टीका। कवित्त (८४३–५९५ = २४८)

राना की मलीन मति, देखि, बसी द्वारावति, रति गिरधारी लाल, नित ही लड़ाइयै। लागी चट पटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि, अति दुख मानि, बिप्र श्रेणी लै पठाइयै॥ बेगि लै कै आवौ मोकों प्रान दै जिवावौ अहो गये द्वार धरनौ दै बिनती सुनाइयै॥ सुनि बिदा होन गई राय रणछोर जू पै छाडौं राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै॥ ४८०॥ (६२९–४८० = १४९)

वार्त्तिक तिलक।

राना का बैरभाव और मलीन मति देख, आपने द्वारिका जी में आकर निवास किया "द्वारिका कौ बास हो मोहि द्वारिका कौ बास।" नित्य सप्रेम श्रीगिरिधर लाल जी को लाड लड़ाती थीं।

उधर राना के चित्तौरगढ़ में बहुत से उपद्रव होने लगे। तब इसने आपकी भक्ति का स्वरूप जाना। दुखित हुआ, मन में यह चटपटी लगी कि "मीरा जी यहां आ जायं तो भला।" तब बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर कहा कि "आप लोग जाकर मीरा जी को लिवा लाइये, तो मानों मुझे प्राण जीवन दान दीजिये"। द्वारावती जाके उन ब्राह्मणों ने बहुत भांति से कहा, परंतु आप के मन में एक न आई। तब ब्राह्मणों ने धरना देकर कहा कि "जब तक

नहीं चलोगी तब तक हम अन्न जल नहीं ग्रहण करेंगे "।

आप ने कहा " अच्छा, मैं श्रीरणछोर जी से बिदा हो आऊं "। आके एक पद बनाके गाया उसके अंत का तुक यह है " मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिलि बिछुड़न नहिं कीजे।"

प्रभु ने सप्रेम प्रार्थना सुन, मीरा जी को सदेह अपनी मूर्त्ति में (प्राय: सम्बत् १६४५) लीन कर लिया, मीरा जी का केवल एक वस्त्र मात्र प्रभु के ऊपर रह गया। देखकर सब ने " जय जय " कार किया। बाबू कार्त्तिक प्रसाद जी ने भी आपका जीवन चरित्र बहुत अच्छा लिखा है ॥ श्री मीरा जी के अनन्तर अकबर ने राणा के नगर को लेलिया॥

(५९६) मूल। छप्पय (८४३–५९६ = २४७)

आमेर अछित कूरम कौ, द्वारिकानाथ दरसन दियौ ॥ श्रीकृष्णदास उपदेस, परम तत्व परचौ पायौ। निरगुन सगुन निरूप तिमिर अज्ञान नसायौ ॥ काछ वाच निकलंक मनौ गांगेय युधिष्ठिर। हरि पूजा प्रहलाद, धर्म ध्वज धारी जगपर ॥ " पृथीराज " परचौ प्रगट तन संख चक्र मंडित कियौ। आंमेर अछित कूरम कौ द्वारिकानाथ दरसन दियौ ॥ ११६ ॥ (२१४–११६ = ९८)

(१८९) श्रीपृथ्वीराज जी।

वार्तिक तिलक।

श्रीपृथ्वीराज़ जी कूर्म अर्थात कछवाह आमेर नगर के राजा को आमेर ही में श्रीद्वारिकानाथ जी ने कृपा करके दरसन दिया। पयहारी श्रीकृष्णदास जी के उपदेश से आपको परब्रह्म तत्व का परचौ, अर्थात् साक्षात्कार ज्ञान, प्राप्त हुआ; श्रीराम जी के निर्गुण और सगुण रूप के निरूपण से गुरु श्रीकृष्ण दास जी ने अज्ञान रूपी अंधकार सब नाश कर दिया। आप कच्छ में निःकलंक, अर्थात् स्वपत्नीव्रत जितेन्द्रिय श्रीगांगेय (भीष्म जी) के सरिस; सत्य वचन बोलने में श्री-युधिष्ठिर जी के तुल्य; श्रीहरि पूजन में प्रहलाद जी के समान; और सम्पूर्ण जगत के लोगों से परे (श्रेष्ठ) धर्म की ध्वजा धारण करनेवाले हुए।

श्रीपृथीराज जी का यह परचौ प्रगट हुआ कि आमेर ही में द्वारिका के छाप शंख चक्र गदा पद्म के चिन्हों से आपका तन भूषित हुआ॥

(५९७) टीका। कवित्त (८४३—५९७=२४६)

पृथीराज राजा चल्यौ द्वारिका श्रीस्वामी संग, अति रस रंग भर्‌यौ, आज्ञा प्रभु पाई है। सुनिकै दिवान, दुख मानि, निसि कान लग्यौ, कही "पर्‌यौ साधु सेवा भक्ति पुर छाई है॥ देखिये निहारि कै विचार कीजे, इच्छा जोई," "लीजे नहीं साथ, जावौ;" बात लै दुराई है। आयौ भोर भूप हाथ जोरि करि ठाढ़ौ रह्यौ; कह्यौ "रहौ देश;" सो निदेस न

सुहाई है ॥ ४८१ ॥ (६२९–४८१ = १४८)

" दीवान = دیوان = मुख्य मन्त्री, प्रधान।

वार्तिक तिलक।

आमेर के राजा श्रीपृथ्वीराज जी, स्वामी श्रीकृष्णदास जी की आज्ञा ले साथ साथ द्वारिका जी चलने को, प्रेम रंग से भरे सन्नद्ध हुए। यह सुन मुख्य मंत्री ने, दुखित हो रात्रि में जाके श्रीस्वामी जी से प्रार्थना की कि " प्रभो! राजा साधु-सेवा में पग रहे हैं और पुरभर में भक्ति छा रही है, इस समय इनके यहां से चले जाने से साधु-सेवा में विघ्न होगा आप दिव्य दृष्टि से देख विचार के जो इच्छा हो सो कीजिये।" श्रीपयहारी जी ने कहा कि "तुम अच्छा कहते हो जाओ हम उनको साथ नहीं ले जायंगे"।

श्रीस्वामी जी ने मंत्री की बात छिपा रक्खी; प्रातःकाल राजा आके स्वामी जी के आगे चलने के लिये हाथ जोड़ खड़े हुए; आपने आज्ञा दी कि " तुम यहां ही नगर में रहो, साधु-सेवा करो "।

सुनके राजा को आज्ञा प्रिय न लगी॥

(५९८) टीका। कवित्त (८४३–५९८ = २४५)

द्वारावतीनाथ देखि, गोमती स्नान करौं, धरौं भुज छाप," आप मन अभिलाषियै।" चिंता जिनि कीजै तीनों बात इहां लीजै अजू; " दीजै जोई आज्ञा सोई सिर धरि राखियै॥ आये पहुंचाय दूर, नैन जल पूर बहे, दहे उर भारी, " कहां संग रस चाखियै?"। बीते दिन दोय, निसि रहे हुते सोय,

भोइ गई भक्ति गिरा आय बानी मधु भाषिये ॥ ४८२ ॥
(६२९-४८२ = १४७)

वार्तिक तिलक।

स्वामी जी से राजा ने प्रार्थना की कि श्रीद्वारिकानाथ के दरसन कर गोमती स्नान करूंगा, और भुजाओं में शंख-चक्रादिक छाप लूंगा, आप कृपाकर मुझे साथ ले चलने की इच्छा करिये। आपने उत्तर दिया "तुम चिंता मत करो; दरसन, स्नान, छाप, तीनों यहां ही लो।" सुनकर राजा ने कहा "जो आपकी आज्ञा है सो सीसपर रखता हूं।"

स्वामी जी ने द्वारिका को यात्रा किया, आप बहुत लम्बे तक पहुंचाके लौट आये। नेत्रों में प्रेम जल की धारा बहने लगी, हृदय में बड़ा अनुताप हुआ। मन में विचारने लगे कि स्वामी जी के साथ का सुख मुझ मंदभागी को न मिला, इस अनुताप से दो दिवस बीते तीसरी रात्री में सोने लगे: श्री-कृष्णदास जी की भक्ति युक्त वाक्य श्रीद्वारिकाधीशजी के मनमें व्याप्त होगई, इस्से साक्षात् आके राजा से मधुर वाणी बोले ॥

(५९९) टीका। कवित्त (८४३-५९९ = २४४)

"अहो पृथीराज" कही, स्वामी ही सी बानी लही, आयौ उठि दौरि वाही ठौर प्रभु देखे हैं। घूम्यौ कह्यौ कान धरौ, गोमती स्नान करौ, सुनि कै अन्हायौ, पुनि वे न कहूं पेखे हैं॥ संख चक्र आदि छाप तन सब व्याप गई, भई यों अवार रानी आय अवरेखे हैं। बोले "रह्यौ नीर में सरीर, लै सनाथ कीजे, लीजै साथ हिये," निज भाग करि लेखे हैं

॥ ४८३ ॥ (६२९–४८३ = १४६)

वार्तिक तिलक।

प्रभु ने श्रीकृष्णदास जी कीसी ही बानी से पुकारा कि "ए पृथ्वीराज!" राजा सुनके उठे और दौड़के वहां ही आये; देखें तो श्रीद्वारिकानाथ जी खड़े हैं; प्रदक्षिणा कर साष्टांग प्रणाम किये। प्रभु ने आज्ञा दी कि "कानों को मूंद गोमती जी में स्नान करौ।"

आज्ञा सुन राजा ने प्रत्यक्ष श्रीगोमती जी में स्नान किया, फिर प्रभु अंतर्ध्यान होगये। उन को न देखा और शंखचक्र आदिक छापें राजा के तन में सब अंकित हो गईं।

उठने में कुछ बिलंब देख रानी ने आ देखा; आप ने कहा कि "मैं गोमती के जल में रहा हूं, मेरे शरीर और वस्त्रों का जल लेकर तुम भी स्पर्श करके अपने शरीर को सनाथ करलो" ॥ (कोई कहते हैं कि गोमती ही जी प्रत्यक्ष थीं उसी में रानी को स्नान कराया) और कहा कि "हृदय में द्वारकानाथ जी का ध्यान भी कर लो;" रानी ने वैसा ही कर अपने बड़े भाग माने ॥

(६००) टीका। कवित्त (८४१–६०० = २४१)

भयौ जब भोर, पुर बड़ौ भक्ति सोर, पर्यो कर्यो आनि दरसन भई, भीर भारी है। आये बहु संत, औ महंत बड़े बड़े धाये, अति सुख पाये, देह रचना निहारी है ॥ नाना भेट आवै, हित महिमा सुनावै, राजा सुनत लजावै, जानी कृपा बनवारी है। मंदिर करायौ, प्रभु रूप पधरायौ,

सब जग जस गायौ, कथा मोको लागी प्यारी है ॥४८४॥
(६२९–४८४ = १४५)

वार्तिक तिलक ।

जब प्रभात में राजा बाहर आये, और सब लोगों ने शंखचक्रादि मुद्रा दोनों बाहुँ में देखे, तब तो नगर भर में आप की भक्ति का बड़ा धूम मच गया; सब दरसन के लिये आये बड़ी भारी भीड़ हुई; पुर में और पुर के समीप जितने बड़े बड़े भारी संत महंत थे सब दौड़ आये । आपके देह की रचना देख अति सुखी हुए । भले लोग अनेक प्रकार की भेट लाते हैं, कोई आपकी भक्ति की महिमा गाते हैं; राजा सुन लज्जित होकर श्रीबनमाली प्रभु की कृपा बिचारते हैं । तदनंतर राजा जी बड़ा भारी मंदिर बनवा प्रभु को पधरा के सप्रेम पूजा भजन में तत्पर हुए । सम्पूर्ण जगत के लोग आपका यश गान करते थे, श्रीपृथीराज जी की यह कथा मुझे बड़ी प्यारी लगी है ॥

(६०१) टीका । कवित्त (८४३–६०१ = २४२)

विप्र दृगहीन सो अनाथ, बैजनाथ द्वार पर्‍यौ, चख चाहै, मास केतिक बिहाने हैं । आज्ञा वार दोय चार भई "ये न फेरि होंहि, " याको हठसार देखि, शिव पिघलाने हैं ॥ " पृथी-राज " अंग के अँगोछा सों अँगोछौ जाय, आय कै सुनाई द्विज गौरव डराने हैं ॥ नयौ मँगवाय तन छुवाय दियौ छुवायौ नैन खुले चैन भयौ जन लखि सरसाने हैं ॥ ४८५ ॥
(६२९–४८५ = १४४)

वार्तिक तिलक ।

एक समय एक अंधा अनाथ ब्राह्मण श्रीवैद्यनाथ महादेव जी के द्वार पर नेत्र प्राप्ति के लिये जा पड़ा; कई मास व्यतीत हो गये स्वप्न में (वा समीपियों के द्वारा) शिव जी ने दो चार बार आज्ञा दी कि " ये नेत्र फूटने पर फिर ज्योतियुक्त नहीं होने के " परंतु ब्राह्मण ने बड़ा हठ किया। उसकी हठ को सारांश देख, शिव जी ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि " जाओ, श्रीरामभक्त पृथ्वीराज के अंग पोंछने के अँगोछे से नेत्रों को पोंछौ, खुल् जायंगे । "

आकर उस ब्राह्मण ने वृत्तांत आपसे कहा । प्रथम तो आप ब्राह्मण के गौरव से अपने अंग पोंछने का वस्त्र देने में डरे । तथापि नवीन वस्त्र मँगा, अपने अंग में छुला, विप्र को दिया । ब्राह्मण जी ने आंखें पोंछीं; तत्काल नेत्र खुल गये । ब्राह्मण जी सुखी हुए । भक्ति की महिमा जानी । सब लोग यह कौतुक देख पृथ्वीराज के प्रभाव से सरस हो, जय जय कार करने लगे । पृथ्वीराज की भक्ति की जय॥

(६०२) मूल । छप्पय (८४३–६०२ = २४१)

भक्तनि कौ आदर अधिक राजवंश मैं इन कियौ । लघु, मथुरा; मेरता भक्त अति जैमल[२] पोषे । टोडे भजन निधान रामचंद[३] हरिजन तोषे ॥ अभैराम[४] एक रसहिं नेम नींवा के भारी । करमसी, सुरतान, भगवान[५], बीरम[६] भूपति, व्रत-

धारी॥ईश्वर, अखैराज, रायमल, कन्हर, मधुकर नृप, सरवसु दियौ। भक्तनि कौ आदर अधिक राजवंश मैं इन कियौ॥११७॥ (२१४-११७=९७)

वार्तिक तिलक।

राज बंशियों में इतने राजाओं ने भगवतभक्तों का अति आदर सेवा सत्कार किया।

मथुरा में श्री लघु जन जी, और मेरता में श्री जयमल जी ने भक्तों को अति पोषण किया। टोड़े में भजन निधान श्रीरामचन्द्रजन जी ने हरिजनों का अति संतोष किया। श्रीनीवां जी ने तथा श्रीअभैराम जी ने साधुसेवा का भारी नेम एक रस निबाहा। करमसी में श्री भगवान् जी, और सुरतान में वीरम जी, ये दोनों भूप साधुसेवा ब्रत धारण करनेवाले हुए। श्री ईश्वर जी, श्रीअक्षयराज जी, श्रीरायमल जी, श्रीकान्हर जी, श्रीमधुकरसाह जी, इन राजाओं ने भगवद्भक्तों को अपना सरवस्व दिया और जग में यश लिया॥

१ श्रीलघुजन जी	७ श्रीवीरम जी
२ श्रीजयमल जी	८ श्रीईश्वर जी
३ श्रीरामचन्द्रजन जी	९ श्रीअक्षयराज जी
४ श्रीनीवां जी	१० श्रीरायमल जी
५ श्रीअभयराम जी	११ श्रीकान्हर जी
६ श्रीभगवान् जी	१२ श्रीमधुकरसाह जी

श्रीसीतारामीय मुनशी तपस्वीराम जी ने लिखा है कि किसी हद

भक्तमाली तथा शुद्ध भक्तमाल की प्रति के न मिलने से " नामों का ठीक पता लगाना बड़ा ही कठिन है "। श्रीराधाकृष्णदास जी ने भी लिखा है कि " खेद का विषय है कि मुझे कोई शुद्ध प्रति इस्की (नाभा जी कृत भक्तमाल की) नहीं मिली " इस्से नामों के पता लगाने में बहुत कुछ कठिनता पड़ी। श्रीराधाकृष्णदास जी ने (१) " व्यास जी की बाणी " से छब्बीस २६, (२) " भगवत रसिक जी की भक्त नामावली " से एकसौ उनतीस १२९, (३) " मलूकदास जी के ज्ञानबोध " से ६६ छयासठ, (४) " नागरीदास के पद प्रसंगमाला " से छत्तीस ३६, और (५) " ध्रुवदास जी की भक्तनामावली " से एकसौ बाईस १२२ नामों की नामावलियां लिखी हैं॥ इसके लिये धन्यवाद देता हूं॥ पर, उनने भी श्रीभक्तमाल की नामावली नहीं ही लिखी॥

(१९०) श्रीजयमल जी।

(६०३) टीका। कवित्त (८४३-६०३=२४०)

मेरतें बसत भूप, भक्तिको सरूप जानै, जैमल अनूप जाकी कथा कहि आये हैं। करी साधु सेवा रीति प्रीति की प्रतीति भई, नई एक सुनौ हरि कैसे के लडाए हैं॥ नीचे मानि मंदिर सो सुंदर विचारी बात, छात पर बंगला कै चित्र लै बनाये हैं। विविधि बिछौना सेज राजत उढ़ौना पान दान धरि सौना जरी परदा सिवाये हैं॥४८६॥ (६२९-४८६=१४३)

वार्तिक तिलक।

श्रीजयमल राजा मेरते (मीरथ) में बसते, भक्ति का अनूप रूप जानते थे, जिनकी कथा प्रथम (कवित्त २३१, पृष्ठ ६३९ में) कह आये हैं। उनकी संतों में प्रतीति हुई इस लिये रीति प्रीति से सेवा की। अब जिस प्रकार से श्रीहरि को लाड़ लडाया सो नवीन वार्ता सुनिये। मन्दिर में

प्रभु की सेवा पूजा होती थी; परंतु इस को नीचा मान एक सुन्दर बात बिचार, ऊपर छत पर बड़ा बिचित्र बँगला बनवाया, उसमें, चँदोवा, दिव्य सेज, सुन्दर तकिये, बिछौना, ओढना, आदिक सज सजाके, सुन्दर जड़ाऊ सुवर्ण के पानदान, इत्रदान आदिक सामग्री सब रख, जरी के परदे द्वारों में लगवाये, भली भांति सजवाया रचना कराया।

कहते हैं कि श्रीजयमल जी श्रीमीराबाई जी के छोटे भाई थे। इनने मीरथ (मेरठ) नगर को छोटा मथुरा ही बना रक्खा था।

(६०४) टीका। कवित्त (८४३—६०४=२३९)

ताकी दारु सीढ़ी, करि रचना, उतारि धरैं, भरैं दूरि चौकी, आप भाव स्वच्छताई है। मानसी बिचारैं "लाल सेज पग धारैं, पान खात लै, उगार डारैं, पौढ़े सुखदाई है॥ तिया हूं न भेद जानै, सो निसेनी धरी वानै, देखै को किशोर सोयौ फिरी भोर आई है। पति कों सुनाई, भई अति मन भाई, वाकों खीझि डरपाई, जानी भाग अधिकाई है॥ ४८७॥ (६२९—४८७=१४२)

वार्तिक तिलक।

उस सदन में चढ़ने के लिये केवल काठ की सीढ़ी रक्खी। अपने हाथों सब रचना कर फिर सीढ़ी पृथक धर देते थे। आपके मन में भावना की निर्मलता थी। इस्से अलग चौकी दिया करते। यह मानसी भावना ध्यान करते थे कि श्रीलाल जी सेज पर पधारते हैं, पान खाते हैं, फिर पीकदान में उगाल डालदेते हैं। भक्तों के सुखदाता शयन करते हैं।"

इस भेद को आपकी स्त्री भी नहीं जानती थी। एक रात वही काठ वाली सीढ़ी लगाके उसने झांकके देखा तो उस सेज पर कोई किशोर श्याम सुन्दर सोरहे हैं। लौट आई फिर प्रभात आके अपने पति जयमल जी को वह वार्ता सुनाई। आपने सुनके सुखपूर्वक अपना मनोर्थ पूर्ण माना और ऊपर से स्त्री को रिसाके डरवाया कि "सावधान, सुनो, अब ऐसा कभी न करना" पर हृदय में उसका भाग अधिक जाना कि "धन्य है यह जिसने श्रीप्रभु के साक्षात दरशन पाये"। भावना हो तो ऐसी दृढ़॥ सेवा हो यों वित्तशाठ्य छोड़कर॥ आपके अष्टयाम की जय, आपके मानसी भावना की जय॥

(१९१) श्रीमधुकर साह जी।

(६०५) टीका। कवित्त (८४३–६०५=२३८)

मधुकरसाह, नाम कियौ लै सफल जातें, भेष गुन सार ग्रहैं, तजत असार हैं। "औंडछे" को भूप, भक्त भूप, सुख रूप भयौ, लयौ पन भारी जाके और न बिचार है॥ कंठी धरि आवै कोय, धोय पग, पावै सदा, भाई दूखि, खर गर डार्यौ मालभार है। पाय पर छाल, कही "आज जू निहाल किये," हिये द्रुये दुष्ट पाव गहे दृगधार है॥ ४८८॥ (६२९–४८८=१४१)

वार्तिक तिलक।

"श्रीमधुकरसाह" जी, नाम देश बुँदेलखण्ड

ओंड़छा नगर के राजा, भक्तराज हुए। अपने नाम का गुण यथार्थ दिखा दिया अर्थात् जैसे मधुकर (भ्रमर) ऊंचे नीचे सब फूलों का सार रस और सुगंध ही मात्र लेता है ऐसे ही ऊंचे नीचे कोई शरीर में हरिभक्त का वेष देख वही सार ग्रहण करते थे, जाति पक्ष नहीं। जो कोई कंठी तिलक धारण कर आवै उसी का चरण धोके चरणामृत लेते परिक्रमा दण्डवत करते थे। आपका ऐसा व्रत भारी था।

यह देख आपके भाइयों को अच्छा नहीं लगता था; दुष्टों ने एक दिवस एक गधे के तिलक कर, बहुत से माला पहनाय, आपके निवास की ओर कर दिया। आप देखते ही उस गर्दभ का चरण धो, चरणामृत ले, उसको भोजन कराया, और बोले "आज मैं कृतार्थ हुआ कि गर्दभ भी कंठी तिलक धारण कर मेरे घर आते हैं।"

दोहा—भूतल में अवलों मिले, द्वै पद के बहु संत॥
चारि चरन के आज ही, देख्यौं संत लसंत॥ १॥

दुष्ट सब आपकी निष्ठा देखकर नेत्रों में प्रेमजल भर चरणों पर पड़े, और हरि सन्मुख हुए॥

(१९२) राठौर श्रीखेमालरत्न जी।

(६०६) मूल। छप्पय (८४३–६०६=२३७)

खेमाल रतन[1] राठौर के अटल भक्ति आई सदन॥ "रैना[2]" पर गुण राम भजन भागौत उजागर। प्रेमी परम "किशोर[3]" उदर राजा रत-नाकर॥ हरिदासनके दास,दसा ऊंची, ध्वज धारी

निर्भै अनानि, उदार, रसिक जस रसना भारी ॥
दसधा संपति, संत बल सदा रहत प्रफुलित वदन।
खेमालरतन राठौर के अटल भक्ति आई सदन
॥ ११८ ॥ (२१४—११८ = ९६)

वार्तिक तिलक।

क्षत्री राठौर श्रीखेमालरतन जी के घर में, अटल (अचल) भगवत भक्ति ने आके निवास किया। श्रीखेमालरतन जी के पुत्र रामरयन जी श्रीराम गुण श्रवण और भजन में परायण परम उजागर भागवत हुए। श्रीरामरयन जी के पुत्र "किशोरसिंह" जी परम प्रेमी ऐसे शुभ गुण युक्त हृदय वाले शोभित हुए कि मानों रत्नाकर (समुद्र) हैं। ये तीनों भक्त श्रीहरिदास संतों के परम दास और उत्तम दशा वाले हुए। साधुसेवारूपी कीर्ति की ऊंची ध्वजा गाड़के फहरा दिये; भक्तिमार्ग में निर्भय, अनन्य, और उदार होते श्रीरसिकराज प्रभु के यश रसना से अतिशय गान किये। संतों के बल से, दशधा कहिये प्रेमाभक्ति संपत्ति से युक्त, सदा सानन्द प्रफुल्लित मुख रहते थे॥

(१९३) राजा श्रीरामरयन जी।

(६०७) मूल। छप्पय (८४३—६०७ = २३६)

कलिजुग, भक्ति करेरी कमान "राम रैन" कैं
रिजु करी॥ अजर धर्म आचर्यो, लोक हित मनौ
नीलकँठ। निंदक जग अनिराय कहा महिमा

जानैगो भूसठ ॥ बिदित गांधर्बी व्याह कियौ दुसकंत प्रमानै। भरत पुत्र भागौत सुमुख शुकदेव बखानै ॥ और भूप कोउ छूवै सकै दृष्टि जाय नाहिन धरी। कलिजुग भक्ति* कररी कमान रामरैन कै रिजु करी ॥ ११९ ॥ (२१४-११९=९५)

*कमान = کمان = धनुष।

वार्त्तिक तिलक।

कलियुग में किसी से न चढ़ने वाले कठोर धनुष(कमान) सारिखा अनुराग (भक्ति) को श्रीरामरयन जी ने सरलता से चढ़ा लिया; कभी जीर्ण न होनेवाला जो भगवत धर्म सो आचरण किया; सबलोगों के हितकार करने में नीलकंठ(शिव जी) के समान श्रीरामभक्ति और लोक संपत्ति दोनों देनेवाले थे। और जगत में दुर्मत वाला निंदक भूसठ (कुत्ता) आपकी महिमा को कैसे जान सकता है? आपने लीला स्वरूप श्री कृष्णचन्द्र से अपनी कन्या का गांधर्ब बिवाह इस प्रकार कर दिया कि जैसे दुष्यंत राजा और शकुंतला का गांधर्व विवाह बिदित भागवत में प्रमाण है। जिन दोनों से भरत नाम का पुत्र हुआ सो भागवत में शुकदेव जी ने वखान किया है, भला इस करनी को कोई राजा कैसे छू सकता है वरंच दृष्टी से देख भी नहीं सकता इस प्रकार कठिन भक्ति, आपने सरलता से की ॥

(६०८) टीका । कवित्त (८४३–६०८ = २३५)

पुन्यौ में प्रकाश भयौ सरद समाज रास बिबिधि बि-लास नृत्य राग रंग भारी है । बैठे रस भीजे दोऊ, बोल्यौ राम राजा रीझि, भेट कहा कीजै बिप्र कही जोई प्यारी है ॥ प्यार को बिचारै न निहारै कहूं नेकु छटा, सुता रूप-घटा अनुरूप सेवा ज्यारी है । रही सभा सोचि, आप जाय के लिवाय ल्याये, भेष सों दिवाये फेरे, संपत ले वारी है ॥ ४८९ ॥ (६२९ –४८९ = १४०)

वार्त्तिक तिलक ।

आपके लीलानुकरण निष्ठा भी बड़ी थी। आश्विन मास की शरद पूर्णमासी के समाज में रासलीला हुई; उसमें बिबिधि प्रकार बिलास नाच गान का भारी रंग बढ़ा; फिर दोऊ प्रिया प्रीतम प्रेम रस से भीगे बिराजमान हुए । तब राजा रामरयन ने अपने समीपियों से पूछा कि " प्रभु को भेट क्या करना चाहिये ? " सुनके एक अनुरागी ब्राह्मण बोले कि " जो आपको प्यारी वस्तु होवे सो भेंट कीजिये " । तब, राजा अपना प्रियत्व बिचारने लगे, किसी वस्तु में थोड़ी भी प्रियता न देखी; रूप के घटा के समान आपकी एक कन्या थी उसमें अपना प्रियत्व जान, सेवा के अनुरूप मान, देने के लिये निश्चय किया । सब सभा सोच बिचार कर रही थी कि " ये क्या भेंट करेंगे ? " । आप स्वयं जाके वस्त्र भूषणों से शृंगार करा, लाके लीला स्वरूप प्रभु को सुता का हाथ पकड़ा के अर्पण

कर दिया। फिर जो श्रीहरि भेष धारण किए लीला स्वरूप थे उन्हीं के साथ फेरे (भाँवरी) भी दिवाए, और धन संपति इतना दिया कि जो जन्म भर युक्त भोग करने में न चुके।

(१९४) श्रीरामरयन जी की धर्मपत्नी।

(६०९) मूल। छप्पै (८४३-६०९=२३४)

हरि, गुरु, हरिदासनि सों, रामघरानि सांची रही॥ आरज को उपदेश सुतो उर नीके धार्‌यो। नवधा, दसधा, प्रीति, आन धर्म सबै बिसार्‌यो॥ अच्युत कुल अनुराग प्रगट पुरुषारथ जान्यो। सारासार-बिवेक, बात तीनो मन मान्यो॥ दासत्व, अनन्य, उदारता, संतिन मुख, राजा कही। हरि, गुरु, हरिदासनि सों, रामघरानि सांची रही॥ १२०॥ (२१४-१२०=९४)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीहरि, और श्रीगुरु तथा श्रीहरिभक्तोंसे, श्री "रामरयन" जी की स्त्री सच्ची प्रीतियुक्त रही। आर्य्य (श्रेष्ठ) जनों का उपदेश हृदय में भले प्रकार धारण किया। नवधा और "दशधा" (प्रेमा) भक्तियों में प्रीति कर, और सब कर्म धर्म भुला दिये। अच्युत कुल बैष्णवों में प्रेम करना ही परम पुरुषार्थ जाना; और सार असार का विवेक भी यथार्थ हुआ। श्रीयुगलसर्कार की दास्यता, तथा अनन्यता, और संतसेवा में उदारता, ये तीनों वार्ताएं, भक्तिवती जी

को अति प्रिय लगती थीं। उसका सुयश संत लोग और स्वयं राजा (उनके पति ही) अपने मुखसे कहा करते थे॥

(६१०) टीका । कबित्त (८४३–६१० = २३३)

आये मधुपुरी राजाराम अभिराम दोऊ, दाम पै न राख्यौ, साधु बिप्र भुगताये हैं। ऐसे ये उदार राहखरच सँभार नाहिं, चलिबौ विचार भयौ चूरा दीठ आये हैं॥ मुद्रा सत पांच मोल खोलि तिया आगै धरे, दीजै बेचि गए नाभा कर पहिराये हैं। पति को बुलाइ कही नीके देखि रीझे भीजे काढिकै करज पुर आये दै पठाये हैं॥ ४९० ॥ (६२९–४९० = १३९)

" राह-खर्च " = راہ خرچ = पन्थमें व्यय के अर्थ धन।

" क़र्ज़ " = قرض = ऋण ।

वार्तिक तिलक ।

एक समय राजा रामरयन अपनी धर्मपत्नी के सहित श्रीमथुरा जी में आके कुछ दिन रहे। पास में जो कुछ द्रव्य था, सो सब साधु ब्राह्मणों को देदिया; ऐसे उदार थे कि मार्ग के लिये कुछ भी न रक्खा।

अपने पुर में चलने का बिचार हुआ; तो आपकी धर्म पत्नी के हाथों में कड़े दृष्टि पड़े; सो उनने उतार के देदिये। कहा कि "इनको बेच दीजिये"। पान्सौ रुपये के मोल के थे। आप लेकर आये, श्रीनाभास्वामी जी के कर कमल में पहना दिये। वह भक्तिवती देख अति प्रसन्न हो पति को बुलाके कहने लगी " आपने बहुत ही अच्छा

किया, मैं देखकर अति प्रसन्न हुई। यह सुन, आप भी प्रेम से भीज गये; फिर ऋण द्रव्य लेकर अपने पुर में आये, और वह द्रव्य अपने वहां से श्रीमथुरा जी भेज दिया।

(१९५) राजकुमार श्रीकिशोरसिंह जी।

(६११) मूल। छप्पै (८४३-६११=२३२)

अभिलाष उभै खेमाल का ते किशोर पूरा किया॥ पायनि नूपुर बांधि नृत्य नगधर हित नाच्यौ। राम कलस मन रली सीस तातें नहिं बांच्यौ॥ बानी बिमल उदार, भक्ति महिमा बिस्तारी। प्रेम पुंज सुठि सील बिनय संतानि रुचि कारी॥ सृष्टि सराहै राम सुव लघु बैस लछन आरज लिया। अभिलाष उभै खेमाल का ते किशोर पूरा किया॥ १२१॥ (२१४-१२१=९३)

वार्तिक तिलक।

श्री "खेमालरतन" जी के शरीर त्याग समय दो अभिलाष थे; सो उन दोनों को आप के पौत्र (पोते) श्रीकिशोर जी ने पूर्ण किया।

अपने चरणों में नूपुर बांध, श्रीगिरिधर जी की प्रसन्नता हेतु नृत्य करते * और श्रीरामजी के पूजन हेतु मन लगाके कलश में जल स्वयं लाया करते थे। एक दिन भी उस कलश से आपका शीश नहीं बचा; और छन्द बंध विमल

वाणी से श्रीभक्ति की उदार महिमा विस्तारपूर्वक आपने मान किया। आप प्रेमपुंज, अतिशय शीलवान, विनय सम्पन्न थे, और सदा संतों की रुचि से चलते थे। सम्पूर्ण सृष्टि के लोग सराहते थे कि श्रीरामरयन जी के पुत्र ने थोड़ी ही अवस्था में श्रेष्ठ (सयाने) जनों के सब लक्षण धारण कर लिये और सदा उसका निर्वाह किया॥

दोहा—" निर्बाह्यो नीके सबै, सुन्दर भजन को नेम ॥ १ ॥
मोह छाड़ि अभिमान सब, भक्तन सो अतिप्रेम ।

* नृत्य, नगधर (श्रीकृष्ण) जी के हित; और कलश, श्रीराम जी के हित, कहने का हेतु । ये राजा, पयहारी श्रीकृष्णदास जी, श्रीकीलदास, श्रीअग्र स्वामी जी के शिष्य श्रीरामोपासक थे, परन्तु वृन्दावन की समीपता से श्रीकृष्ण जी में भी अति प्रीति रखतेथे॥

(६१२) टीका । कवित्त (८४३–६१२=२३१)

खेमालरतन तन त्याग समै अश्रुताप, बात सुत पूछै अजू नीकें खोलि दीजिये । कीजै पुण्य दान बहु, संपति अमान भरी, धरी हियें दोई सोई कहा सुनि लीजिये ॥ विविधि बड़ाई में समाई मति भई पै न नितही बिचार अवमन पर खीजियै । नीर भरि घट सीस धरिकै न ल्यायौ, और नूपुरन बांधि नृत्य कियौ नांहि छीजियै ॥ ४९१ ॥
(६२९–४९१ = १३८)

वार्तिक तिलक ।

श्रीखेमालरतन जी शरीर त्याग समय श्रीप्रभु कृपा से थे तो बड़े सावधान, परंतु अश्रुपात बहुत होते थे । देखके आपके पुत्र रामरयन जी पूछने लगे कि " आप खोलके

कहिये किस बात का दुख है? जो आज्ञा हो सो पुण्य दान करें, असंख्य द्रव्य भरी धरी है।" आप बोले "हमारी दो अभिलाषा हैं सो सुनो; राजसी बिबिधि बड़ाई में हमारी मति लीन थी इससे दोनों बातें नित्य ही बिचारते ही रहे, परंतु हुई नहीं, इसलिये अब हम मन पर खीझ दुःख सहते हैं, एक तो यह कि प्रभुके पूजन हेतु जल भर, माथे पर घट धर, न लाये; दूसरी पग में नूपुर बांध प्रभु के आगे नृत्य न किया, और शरीर अब छूटता है!"

(६१३) टीका। कबित्त (८४३–६१३ = २३०)

रहे चुपचाप सबै जानी काम आप ही कौ, बोल्यौ यों किशोर नाती आज्ञा मोकों दीजियै। यही नित करौं नहीं टरौं जौलौं जीवै तन मन में हुलास उठि, छाती लाय लीजियै॥ बहु सुख पाये, पाये वैसे ही निबाहे पन, गाये गुन लाल प्यारी अति मति भीजियै। भक्ति बिस्तार कियौ वैस लघु भीज्यौ हियौ, दियौ सनमान संत सभा सब रीझियै॥ ४९२॥ (६२९–४९२ = १३७)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीखेमालरतन जी के वचन सुन पुत्रादिक सब कोई चुप होरहे यह जान कि "यह तो आप ही का काम था, हमारा नहीं" परन्तु आपके नाती (पोता) श्रीकिशोरसिंह जी, उठ खड़े हो, हाथजोड़ बोले "मुझको आज्ञा हो, दोनों नित्य नियम से जबतक जिऊंगा तब तक श्रीहरि कृपा से बड़े हुलास से करूंगा"।

पौत्र की प्रेम प्रतिज्ञा सुन श्रीखेमालरत्न जी ने उठके छाती से लगाया अत्यंत सुख को प्राप्त हुए । तदनंतर शरीर त्यागि प्रभु को प्राप्त हुए । श्रीकिशोर जी ने वैसा ही पन को निबाहा, श्रीयुगल सर्कार के गुण गान करते प्रेम में मति भीग गई, भक्ति को बिस्तार किया ।

थोड़ी ही अवस्था में अनुराग से हृदय छक गया, आप की दशा देख देख सन्तों के समाज रीझके बड़ा सन्मान किया करते थे ॥

(६१४) मूल । छप्पै (८४३–६१४ = २२९)

खेमालरतन राठौर के सुफल बेलि मीठी फली ॥ हरीदास हरिभक्त भक्ति मंदिर को कलसौ । भजन भाव परिपक्व, हृदै भागीरथि जल सौ ॥ तृधा भांति अति अनन्य रामकी रीति निवाही । हरि गुरु हरि बल भांति तिनहि सेवा दृढ साही ॥ पूरन इन्दु प्रमुदित उदधि, त्यों दास देखि बाढै रली । खेमालरतन राठौर के सुफल बेलि मीठी फली ॥ १२२ ॥ (२१४–१२२ = ९२)

वार्तिक तिलक ।

राठौर श्रीखेमालरतन जी की मनोर्थ बेली, भक्तिभूमि में अति मिष्ट फल फली; श्रीहरि जी के और हरिदासों के ऐसे भक्त (इनके सन्तान) हुए कि श्रीहरि निवास भक्ति रूपी मन्दिर के मानों कलश हैं । भजन और भावना से परिपक्व

हृदय ऐसा निर्मल हुआ कि मानों गंगा जी का जल है; मन वचन कर्म तीनों से प्रभु में अनन्य होकर श्रीरामरयन जी की रीति का निर्वाह किया। श्रीहरिरूपी गुरु का बल आपको श्रीहरि ही के समान था, दोनों की दृढ़ सेवा राज ऐश्वर्य से की, और जैसे पूर्णचंद्र को देख सानंदित समुद्र बढ़े, इसी प्रकार भगवतदासों को देख मिल के आप आनन्द से बढ़ते थे।

कोई महात्मा कहते हैं कि यह छप्पै राजकुमार श्रीकिशोरसिंह जी ही के वर्णन में है, और, कोई ऐसा भी कहते हैं कि यह वर्णन श्रीखेमाल जी के पोते (रामरयन जी के भतीजे, वा किशोर जी के छोटे भाई) नाम श्रीहरिदास जी का है। सब बात युक्त है आपके संतान हीं का यश है॥

(१९६) श्रीचतुर्भुज जी (कीर्त्तन निष्ठा)

(६१५) मूल। छप्पै (८४३-६१५=२२८)

(श्री) "हरिवंश" चरन बल "चतुरभुज" "गोंड" देश तीरथ कियौ॥ गायौ भक्ति प्रताप सबहिं दासत्व दृढ़ायौ। राधावल्लभ भजन अनन्यता वर्ग बढ़ायौ॥ 'मुरलीधर' की छाप कबित अति ही निर्दूषन। भक्तनि की अँघ्रिरेनु वहै धारी सिरभूषन। सत संग महा आनन्द मैं, प्रेम रहत भीज्यौ हियौ। (श्री) "हरिवंश" चरण बल "चतुरभुज," "गोंड" देश तीरथ कीयौ॥ १२३॥ (२१४-१२३=९१)

वार्त्तिक तिलक ।

अपने गुरु श्रीहितहरिवंश जी के चरणों के बल से, श्री चतुर्भुज जी ने "गोंड़वाना देश" अधम को, तीर्थ समान पवित्र कर दिया । श्रीभक्ति का प्रताप भले प्रकार गान कर वहां के सब जीवों को श्रीहरिदासता दृढ़ा दी और श्रीराधावल्लभ जी के भजन अनन्यता का परिवार अतिशय बढ़ाया; अपनी कविता में "मुरलीधर" की छाप रखते थे; आपका कवित्त अति ही निर्दूषण होता था, भगवद्भक्तों के चरणों का रेणु आपके भाल का भूषन था । सतसंग में, महा आनन्द देनेवाले प्रभु के प्रेम से आपका हृदय भींगा रहता था ॥

कविता की बानगी लीजे ।

(छप्पै) श्वपच पहिरि जज्ञोपवीत, कर कुशनि गहत जब । करम करै अघ परै हरै पुनि विश्व त्रास तब ॥ पुनि ललाट पट तिलक देय तुलसी माला भरि । हरिके गुन उच्चरै पाप कुल कर्महि परिहरि ॥ चतुर्भुज पुनीत अंत्यज भयौ मुरलीधर सरनौ लियो । तेहि पाछे किन लागियै जिन लोह पलटि कंचन कियौ ॥

(दो०) "हरिवंश" नाम 'ध्रुव' कहत ही, बाढ़ै आनँद बेलि ॥
प्रेमरँगी उर जगमगै, नवल जुगलवर केलि ॥ १ ॥
निगम ब्रह्म परसत नहीं, सो रस सब ते दूरि ॥
कियौ प्रगट हरिवंश जी, रसिकनि जीवनिमूरि ॥ २ ॥

(६१६) टीका । कवित्त (८४३—६१६ = २२७)

गोंडवाने देश, भक्ति लेसहूँ न देख्यौ कहूं, मानुस कौं मारि इष्ट देव कों चढ़ायौ है । तहां जाय देवता के मंत्र लै सुनायौ कान, लियौ उन मानि, माँव सुपन सुनायौ है ॥

स्वामी चतुर्भुजजू के बेगि तुम दास होहु, नातो होय नास सब" गाँव भज्यौ आयौ है । ऐसे शिष्य किये, माला कंठी पाय जिये, पांव लिये, मन दिये, औ अनंत सुख पायौ है ॥ ४९३ ॥ (६२९-४९३ = १३६)

वार्तिक तिलक ।

दक्षिण नर्मदा के निकट "गोंड़वोन" देश में श्रीचतुर्भुज जी ने कहीं भक्ति का लेश भी न पाया, और दुष्टता ऐसी देखी कि वहां के लोग मनुष्य को मार अपनी इष्ट देवता काली को चढ़ाया करते थे । वहां जाके उस देवता के कान में आपने भगवत मंत्र सुनाया । देवता ने श्रद्धापूर्वक मंत्र ग्रहण कर उस ग्राम के सब लोगों को स्वप्न में शिक्षा की कि "तुम सब शीघ्र स्वामी श्रीचतुर्भुज जी के दास (शिष्य) हो जाओ भगवत की भक्ति करो, नहीं तो सब का नाश हो जायगा" । सुनते ही सम्पूर्ण ग्राम के लोग दौड़के आये। आपने सब को शिष्य कर माला कंठी तिलक धारण कराया; सब ने आपके चरणों में प्रणाम किये । सब ने हरि भक्ति मार्ग में मन दिया; सब अति सुख को प्राप्त हुए ।

दोहा—"सकल देस पावन कियौ, भगवत जसहिं बढ़ाइ ।
जहां तहां निज एक रस, गाई भक्ति लड़ाइ ॥"

(श्रीध्रुवदास जी)

(६१७) टीका । कवित्त (८४१-६१७=२२६)

भोग लै लगावैं नाना, संतनि लड़ावैं, कथा भागवत गावैं, भाव भक्ति बिस्तारिये । भज्यौ धन लैके कोऊ, धनी

पाछे पर्यौ सोऊ, आनिके दबायौ, बैठि रह्यौ न निहारियै॥ निकसी पुरान बात, करै नयौगात दिक्षा, सिक्षा सुनि शिष्य भयौ, गह्यौ यों पुकारियै। कहै "या जनम मैं न लियौं कछू", दियौ फारौ हाथ लै उबार्यौ प्रभु, रीति लगी प्यारियै ॥ ४९४ ॥ (६२९-४९४ = १३५)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीचतुर्भुज जी वहां रहके नाना प्रकार के भोग श्रीभगवत को लगाते और संतों को पवाते लाड़ लड़ाते; श्रीभागवत कथा गान कर आपने सब लोगों में भाव भक्ति का बिस्तार किया।

एक दिन एक उचक्का किसी का धन लेकर भागा, वह धनी भी उसके पीछे २ दौड़ा; उचक्का आपकी कथा में घुस कर बैठ गया। धनी ने निहारा देखा, पर पाया नहीं।

आप की कथा में पुराणान्तरकी यह वार्ता निकली "कि जो कोई भगवत मंत्र की दीक्षा लेता है, उस दिन से उसका दूसरा नया जन्म होजाता है"। ऐसा उपदेश सुन वह चोर वहांही आपका शिष्य होगया; और उसने पूजाकर वह द्रव्य पुस्तक पर चढ़ा दिया। जब श्रोता उठे तब धनी उचक्के को पकड़ पुकार के कहने लगा "यह अभी मेरा धन लेकर भाग आया है।"

इसने कहा "मैंने इस जन्म में किसी का कुछ भी नहीं चुराया;" निदान उसने लोहे का फार तपाया हुआ हाथ में लेकर विश्वास पूर्वक कहा कि जो मैं "इस जन्म में कुछ भी न चुराया हो, तो मेरे हाथ न जलैं।" प्रभु ने उसको बचा दिया हांथों में उष्णता तक भी न

आई। इसके विश्वास प्रतीति की रीति मुझे अति ही प्यारी लगी है ॥

"राम मंत्रोपदेशेन माया दूरमुपागता । कृपया गुरुदेवस्य द्वितीयं जन्म कथ्यते ॥ १ ॥ पितृ गोत्री यथा कन्या स्वामि गोत्रेण गोत्रिका । श्रीराम भक्ति मात्रेणाच्युत गोत्रेण गोत्रकः ॥ २ ॥ इति नारद पंचरात्रे प्रमाणम् ॥

(६१८) टीका । कवित्त (८४३–६१८ = २२५)

राजा झूंठ मानि कह्यौ "करो बिन प्रान वाकौ, साधु ये बिराजमान लै कलंक दियै है" । चले ठौर मारिवेकौं, धारिबेकौं सकै कैसे, नैन भरि आये नीर बोल्यौ "धन लियौ है" ॥ कहै नृप साचौ ह्वैकै झूठौ जिन हूजै संत, महिमा अनंत कही "स्वामी ऐसौ कियौ है" ॥ भूप सुनि आयौ उपदेश मन भायौ, शिष्य भयौ नयौ तन पायौ भीजि गयौ हियौ है ॥ ४९५ ॥ (६२९–४९५ = १३४)

वार्तिक तिलक ।

जब वह सपथ में शुद्ध होगया तब राजा ने जाना कि इसने साधु को झूंठ ही चोरी का कलंक लगाया है, इससे अपने जनों को आज्ञा दी कि "इसको मार डालो।" लोग आज्ञा सुन उसको बध करने को चले । तब साधु (जो पहिले चोर था) उसका बध कैसे सहि सकें, नेत्रों में जल भर, बोले कि "इसको मारिये मत, मैंने धन लिया है"

राजा बोला कि "हे संत ! तुम तो सच्चे होकर अब झूंठही चोर क्यों बनते हो ?" उत्तर दिया कि "यह श्रीस्वामी जी की अनंत महिमा है कि मुझे सच्चा बना दिया ।" अपना सब वृत्तांत कह गया ।

राजा ने सुनके उसको छोड़ दिया; और यह मन में निश्चय किया कि "मैं भी शिष्य हो जाऊं" और शिष्य हो ही गया।

नवीन तन पाकर प्रभु के प्रेम में राजा का हृदय भीग गया॥

(६१९) टीका। कवित्त (८४३–६१९ = २२४)

पकि रह्यौ खेत, संत आयकर तोरि लेत, जिते रखवारे मुख सेत सोर कियौ है। कह्यौ स्वामी नाम, सुन्यौ कही "बड़ौ काम भयौ, यह तौ हमारौ," सोई आप सुनि लियौ है॥ लैकै मिष्ठान आय, सुमुख बखान कीनौ, "लीनौ अपनाय आज भीज्यौ मेरौ हियौ है"। लै गये लिवाय नाना भोजन कराय, भक्ति चरचा चलाय, चाय हित रस पियौ है॥ ४९६॥ (६२९–४९६ = १३३)

वार्तिक तिलक।

एक समय श्रीचतुर्भुज जी अपने गृह में थे, आपका गेहूं चने का खेत पक रहा था, संतों की जमात आकर तोड़ने लगी; रखवारों ने पुकारा कि "श्रीचतुर्भुज जी का खेत है!" सन्त बोले "बड़ी अच्छी बात हुई, तब तो यह हमारा ही अन्न है।" और होरा के लिये चने गेहूं की बाली बहुत सी तोड़ ली। खेत रखनेवालों का मुख सूख गया, हल्ला करने लगे। किसी ने जाके आप से पुकार किया कि "साधू सब खेत की बाली तोड़े लेते हैं और कहते हैं कि "यह तो हमारा ही है।"

आप सुनते ही प्रेमानन्द से पूर्ण हो, बहुत सा मीठा

लेकर आये और प्रसन्न मुख से कहने लगे कि "आज मैं धन्य हुआ, मुझे संतों ने अपना लिया, अपना जाना"। आपका हृदय प्रेमानंद से भींग गया फिर गुड़ दे, बाली पवाके गृह में लिवा ले गये, नाना प्रकार के भोजन कराये, फिरि भक्ति मार्ग की चर्चा सतसंग कर, परस्पर प्रेम रस पी के छक गये॥

(१९७) श्रीकृष्णदास जी चालक।

(६२०) मूल। छप्पय (८४३-६२०=२२३)

चालक की चरचरी, चहूं दिशि उदधि अंत लौ अनुसरी॥ सक्रकोप मुठि चरित प्रसिध, पुनि पंचाध्याई। कृष्ण रुक्मिनी केलि, रुचिर भोजन विधि, गाई॥ "गिरिराज धरन" की छाप, गिरा जलधर ज्यों गाजे। संत सिखंडी खंड हृदै आनंद के काजै॥ जाड़ा हरन जग जाडता कृष्ण दास देही धरी। चालक की चरचरी, चहूं दिशि उदधि अंत लौ अनुसरी॥ १२४॥ (२१४-१२४=९०)

वार्तिक तिलक।

चालक की रचना चरचरी छन्द की श्रीकृष्णदास जी की कविता चारों दिशाओं में बरंच समुद्रों के तट पर्यंत विख्यात हुई। उसी छन्द से इन ग्रंथों की रचना की,

शक्रकोप से जो हुआ प्रसिद्ध "गोवर्धन चरित्र," और "रास पंचाध्यायी," "कृष्ण रुक्मिणी के केलि" तथा रुचिर "भगवद्भोजन विधि" इत्यादि।

और, अपने काव्य में "गिरिराजधरन" की छाप रक्खा करते थे। आपकी वाणी, मेघ की गर्जन समान है। संत समाज उसको सुन मयूर के सरिस आनंदित होते हैं। जगत की जड़ता रूपी जाड़ा हरने के लिये श्रीकृष्णदास जी ने श्रीसूर्य्य के सरीखा देह धारण किया था॥

श्रीरामदास जी और श्रीकृष्णदास कई हुये हैं।

दोहा—"युगल प्रेम रस अवधि में, पर्‍यौ प्रबोध मन जाय।
वृन्दावन रस माधुरी, गाई अधिक लड़ाइ॥" (ध्रुवदास)

(१९८) श्रीसन्तदास जी।

(६२१) टीका। छप्पै (८४३–६२१ = २२२)

बिमलानंद प्रबोध वंश "संतदास" सींवां-धरम॥ गोपीनाथ पद राग, भोग छप्पन भुंजाये। पृथु पद्धित अनुसार देव दंपति दुलराये॥ भगवत भक्त समान ठौर द्वै कौ बल गायौ। कवित सूर सो मिलत भेद कछु जात न पायौ॥ जन्म, कर्म, लीला, जुगति, रहसि, भक्ति भेदी मरम। बिम-

लानंद प्रबोध वंश, "संतदास" सींवां धरम॥
॥ १२५ ॥ (२१४-१२५=८९)

वार्तिक तिलक।

श्रीबिमलानंद जी प्रबोधन के वंश में श्री "संतदास" जी, भगवद्धर्म की सीमा (मर्यादा) हुए। श्रीगोपीनाथ जी के चरणों में आपका अति अनुराग था, सो नित्य छप्पन भोग अर्पण करते थे। जिस प्रकार राजा पृथु सप्रेम प्रभु की पूजा करते थे, उसी मार्ग के अनुसार दुलार प्यार से श्रीराधाकृष्ण जी की पूजा किया करते।

भगवत और भगवद्भक्त दोनों का, एक समान बल प्रताप गान किया। और, आपके कबित्त श्रीसूरदास जी के कबित्त में ऐसा मिल जाता, कि कुछ भी भेद नहीं जान पड़ता था। उस कविता में, प्रभु के जन्म, कर्म, लीला, को युक्तिपूर्वक बखान किया; क्योंकि आप रहस्य भक्तिभेद का मर्म (छिपी बातों के) जाननेवाले थे॥

(६२२) टीका। कबित्त (८४३-६२२=२२१)

बसत "निबाई" ग्राम, स्याम सों लगाई मति, ऐसी मन आई, भोग छप्पन लगाये हैं। प्रीति की सचाई यह जग में दिखाई, सेवैं जगन्नाथ देव आप रुचि सों जो पाये हैं॥ राजा कों सुपन दियौ नाम लै प्रगट कियौ, "संत" ही के ग्रह में तौ जेंवो यों रिझाये हैं। भक्ति के अधीन, सब जानत प्रवीन, जन ऐसे है रँगीन, लाल ठौर ठौर गाये हैं॥ ४९७॥ (६२९-४९७=१३२)

वार्तिक तिलक ।

श्रीसंतदास जी निवाई ग्राम में बसते थे । श्रीश्याम-सुन्दर जी से अपनी मति लगाई । मन में उत्साह हुआ सो नित्य छप्पन भोग लगाया करते थे । आपकी सच्ची प्रीति देख श्रीजगन्नाथ जी बड़ी रुचि से आप ही के यहां भोजन करते थे । कुछ दिन में गृह में जो धन था सो भोग में उठ गया, तब प्रभु ने बिचारा कि "मेरे दास का मनोरथ पण अन्यथा न होय;" इससे, राजा को स्वप्न दिया, आपका नाम प्रगट कर कहा कि "मैं तो संतदास ही के गृह में नित्य छप्पन भोग भोजन करता हूं।" उसने मुझे रिझालिया है अर्थात् उनको मेरे भोग के लिये धन और सामग्री दिया करो । आपकी आज्ञा सुन राजा ने वैसा ही किया ॥

श्रीलाल जी रँगीले, भक्ति के ऐसे आधीन हैं । सब प्रवीन जन जानते हैं । क्योंकि प्रभु की भक्ति बिवशता ठौर ठौर में गान की गई है ॥ भक्तवत्सल रंगीले की जय ॥

(१९९) श्री सूरदास मदनमोहन ।

(६२३) मूल । छप्पय (८४३–६२३ = २२०)

(श्री) मदनमोहन सूरदास की, नाम शृंखला जुरी अटल ॥ गान काव्य गुण राशि, सुहृद, सहचरि अवतारी । राधा कृष्ण उपास्य रहसि